प्रसार दूत

कृषि विज्ञान की अग्रणी पत्रिका

सितम्बर 2019

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)

कृषि प्रौद्योगिकी आकलन एवं स्थानान्तरण केन्द्र
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली–110012

संपादकीय

किसान भाइयो, प्रसार दूत का नया अंक लेकर हम पुनः हाजिर हो रहे हैं। वर्षा सामान्य से अधिक रही और देश के अधिकांश भाग बाढ़ की चपेट में आ गए। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में कुछ स्थानों को छोड़कर, जहाँ धान लगा है, अधिकांश जगह फसल पर कुप्रभाव पड़ा है। इससे भी बढ़कर नुकसान यह है कि जन–जीवन अस्तव्यस्त हो गया। स्थानीय लोगों और प्रशासन ने तात्कालिक तौर पर स्थिति को संभालने की कोशिशें की, जिससे काफी जानें बच गईं, लेकिन संपत्ति और फसल का काफी नुकसान हुआ।

असामान्य वर्षा अब हमारे देश के लिए हर वर्ष की बात हो गई है। जल निकासी व्यवस्थाएँ या आपदा प्रबंधन एक दिन में होने वाले कार्य नहीं हैं। इनके लिए दूरगामी योजनाएँ बनानी चाहिए। जलभराव न हो इसकी योजना गाँव या शहर की बसावट के समय ही बनाई जाती है। जल निकास की तमाम धाराओं को मुक्त रखा जाता है। अधिकांश आपदाएँ प्रबंधन की कमी से उपजी हैं, इसलिए इन्हें प्राकृतिक आपदा न कहकर स्थानीय प्रशासन की विफलता कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। पूरे विश्व में जलवायु परिवर्तन हो रहा है, जिसमें मौसमी घटक इसी तरह असामान्य बर्ताव करेंगे। मानसून का असमान वितरण या अजीब व्यवहार होना स्वाभाविक है, इसलिए अब बाढ़ को अपवाद कहकर टालना उचित नहीं है। भविष्य में हमें और विकट आपदाओं के लिए तैयार रहना होगा। इनसे बचने के लिए हमें प्राकृतिक संसाधनों के उचित प्रबंधन को अपनाना होगा।

गत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी दिल्ली में किसानों द्वारा पराली जलाने से होने वाले प्रदूषण को लेकर चर्चा गरम है। आपको विदित ही होगा कि पराली जलाना प्रतिबंधित है और इसका उल्लंघन करने पर दंडात्मक कार्रवाई का प्रावधान है। जहाँ एक ओर रिमोट सेंसिंग की आधुनिक तकनीकों से पराली वाले खेत को चिह्नित करना संभव हो गया है, वहीं संस्थान ने ऐसी तकनीकी भी खोज निकाली है जिससे पराली को अल्पकाल में सड़ाकर उपयोगी खाद में बदला जा सकता है। इसके लिए विशेष प्रकार की कृषि मशीनरी के साथ सूक्ष्मजीवों का प्रयोग किया जाता है, जिसके टीके को "माइक्रोबियल कंसोर्शिया" कहा जाता है। इस टीके के प्रयोग के पराली एक बोझ नहीं बल्कि बहुमूल्य खाद बन गई है।

पर्यावरण को बचाने के लिए प्रावधान और कानून मौजूद हैं, लेकिन इसे ठीक तरीके से लागू नहीं किया जा रहा है। आने वाले समय में यह कानून सख्ती से लागू होंगे। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी पर्यावरण को लेकर गंभीर चिंताएँ हैं। स्वीडन में स्कूली बच्चे पर्यावरण को लेकर सड़क पर उतर गए हैं। हाल ही में ग्रेटा थंबर्ग नामक किशोरी ने न्यूयार्क में हुए विश्व जलवायु सम्मेलन में दुनियाभर के नेताओं को काफी खरी–खोटी सुनाई और कहा कि हमें आपकी बड़ी–बड़ी बातें नहीं ठोस काम चाहिए। इस भाषण ने समूचे विश्व को जगा दिया और अनेक देशों में पर्यावरण को लेकर मुहिम तेज हो गई है। आवश्यकता उचित तकनीकी अपनाकर पर्यावरण को बचाने की है।

परिवहन विभाग ने गत माह से मोटर वाहन कानूनों को तोड़ने पर जुर्माना काफी बढ़ा दिया था, जिससे एक माह में ही उल्लंघनों के मामले एक चौथाई रह गए। दिल्ली में इन दिनों सिंगल यूज प्लास्टिक पर पाबंदी लग गई है। सुनने में आया है कि खाद्य सामग्री की पैकिंग या खेती में काम आने वाले पॉलीथीन पर पाबंदी नहीं है। इसी तरह अनेक संसाधन, जो आज सहज उपलब्ध हैं, उनके दुरूपयोग को रोकने के लिए नए–नए प्रतिबंध सामने आ सकते हैं। जैसे

संभव है कि आने वाले समय में भूजल की कमी को देखते हुए इसका उपयोग सीमित कर दिया जाए। बहरहाल, आने वाला समय और भी चुनौतीपूर्ण होने जा रहा है। इसके लिए हमें अभी से तैयार रहना होगा।

परिस्थिति को देखते हुए प्रतिबंध और सख्त कानून जरूरी हैं, लेकिन हमें यह भी देखना होगा कि इन्हें न्यायसंगत तरीके से बनाया और लागू किया जाए। यह देखना होगा कि प्रतिबंधात्मक कानून पहले उन क्षेत्रों में लागू हों, जहाँ संसाधनों का विलासितापूर्ण उपयोग हो रहा है। समाज के कमजोर और विकल्पहीन वर्ग के लिए राहत की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए, क्योंकि सबको एक ही लाठी से हाँकना न्याय नहीं है। नीति निर्माताओं को चाहिए समर्थ वर्ग से राजस्व हासिल करे और कमजोरों की मदद करें। तुलसीदास जी कहते हैं, मुखिया मुख सों चाहिए, खान–पान सौं एक, पालै पोसै सकल अंग, तुलसी सहित विवेक।

आगामी रबी मौसम को ध्यान में रखते हुए इस अंक में उ.प. मैदानी क्षेत्रों के लिए पूसा संस्थान द्वारा विकसित गेहूं की नवीनतम किस्में, समय पर बुआई के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थानद्वारा विकसित भारतीय सरसों की उन्नत प्रजातियां, चने की उत्पादकता बढ़ाने का उत्तम विकल्प–उन्नत बीज, शीतकालीन सब्जियों की खेती, रबी की मुख्य सब्जियों का समन्वित कीट प्रबंधन, कृषि क्षेत्र में सौर ऊर्जा के उपयोग, बाजरा : पोषण और शुष्क खेती के लिए अनमोल देन, व्यवसायिक खेती के लिये फूलों की नवीन किस्में, पौधों में आवश्यक पोषक तत्वों के कार्य, कमी के लक्षण एवं कमी को दूर करने के उपाय, कृषि में अधिक आय के लिए बटन मशरूम की खेती अपनाएं, अधिक आय हेतु उत्तम कृषि क्रियाओं की प्रासंगिकता पर आलेख शामिल किए गए हैं। उम्मीद है, इनसे आपको कृषि की जानकारी मिलेगी और यह अंक आपके लिए उपयोगी होगा।

(संपादक)

सितम्बर 2019

प्रसार दूत

वर्ष 24 | 2019 | अंक-3

संरक्षक

डॉ. ए.के. सिंह

कार्यवाहक निदेशक

डॉ. जे.पी. शर्मा

संयुक्त निदेशक (प्रसार)

प्रधान सम्पादक

डॉ. जे.पी.एस. डबास

सम्पादक

डॉ. एन.वी कुंभारे

सम्पादक मंडल

डॉ. वाई. वी. सिंह

डॉ. एम. के वर्मा

श्री के. एस. यादव

डॉ. हरीश कुमार

श्री आनन्द विजय दुबे

तकनीकी सहयोग

श्री विजय सिंह जाटव

श्री लक्खीराम मीणा

श्री राजेश कुमार

शुल्क और लेख भेजने एवं पत्रिका मंगाने का पता

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)

भा.कृ.अ.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान

नई दिल्ली–110012

फोनः 011–25841039

पूसा एग्रीकॉमः 1800118989 (टोल फ्री)

ई–मेंलः incharge_atic@iari.res.in

वेबसाइटः www.iari.res.in

विषय सूची | पृष्ठ संख्या

सम्पादकीय

1 उ.प. मैदानी क्षेत्रों के लिए पूसा संस्थान द्वारा विकसित गेहूं की नवीनतम किस्में 01

2. समय पर बुआई के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित भारतीय सरसों की उन्नत प्रजातियां 03

3. चने की उत्पादकता बढ़ाने का उत्तम विकल्प–उन्नत बीज 07

4. शीतकालीन सब्जियों की खेती 14

5. रबी की मुख्य सब्जियों का समन्वित कीट प्रबंधन 24

6. कृषि क्षेत्र में सौर ऊर्जा के उपयोग 29

7. बाजरा : पोषण और शुष्क खेती के लिए अनमोल देन 32

8. व्यवसायिक खेती के लिये फूलों की नवीन किस्में 35

9. पौधों में आवश्यक पोषक तत्वों के कार्य, कमी के लक्षण एवं कमी को दूर करने के उपाय 38

10. कृषि में अधिक आय के लिए बटन मशरूम की खेती अपनाएं 42

11. अधिक आय हेतु उत्तम कृषि क्रियाओं की प्रासंगिकता 48

वार्षिक शुल्क ₹ 80/– मनीआर्डर द्वारा | **एक प्रति मूल्य ₹ 20/–**

उ.प. मैदानी क्षेत्रों के लिए पूसा संस्थान द्वारा विकसित गेहूं की नवीनतम किस्में

राम कुमार शर्मा, अंबरीश कुमार शर्मा एवं नरेश कुमार
आनुवंशिकी संभाग, भा.कृ.अ.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा की दृष्टि से शरद मौसम में उगाई जाने वाली गेहूँ की फसल का मुख्य स्थान है। वर्ष 2017–18 में देश के कुल खाद्यान्न उत्पादन में गेहूँ का योगदान लगभग 35 प्रतिशत था। गेहूँ उत्पादन की दृष्टि से भारत का विश्व में दूसरा स्थान है। वर्ष 2017 में हमारे देश में गेहूँ उत्पादन 98.6 मिलियन टन, क्षेत्रफल 29.7 मिलियन हेक्टेयर एवं उत्पादकता स्तर 3318 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर रहा था।

गेहूँ के उत्पादन, उत्पादकता स्तर में वृद्धि के मुख्य कारक हैं– गेहूं की उन्नत किस्में एवं अनुरूप उत्पादन तकनीक, ढांचागत बुनियादी सुविधाएं तथा उन्नत किसान बंधुओं का अथक समर्पित प्रयास। भारतवर्ष की भौगोलिक परिस्थितियों, मृदा, जलवायु एवं रोगों की विविधता को ध्यान में रखते हुए देशभर में गेहूँ उत्पादन को 6 प्रमुख क्षेत्रों (4 मैदानी क्षेत्रों में और दो पर्वतीय क्षेत्रों में) में बांटा गया है।

इन सभी क्षेत्रों में उत्पादन और क्षेत्रफल के अनुसार उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र मुख्य है। नवीन किस्मों का विकास एवं विमोचन किसी क्षेत्र विशेष के लिए उस क्षेत्र की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए किया जाता है। अतः उपयुक्त किस्म चुनने के लिए क्षेत्र विशेष के लिए अनुमोदित प्रजाति को ही चुनना चाहिए।

उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र की विशेषताएं

देश के कुल गेहूं उत्पादक क्षेत्र का लगभग 35 प्रतिशत क्षेत्र तथा उत्पादन की दृष्टि से 40–45 प्रतिशत का योगदान देने वाला यह क्षेत्र उत्पादकता की दृष्टि से सर्वोपरि है। जल संसाधन की दृष्टि से यह क्षेत्र काफी धनी है। इस क्षेत्र में गेहूं की फसल पकने में 140–150 दिन का समय लेती है। भूरा व पीला रतुआ रोग, कंडुआ एवं करनाल बंट इस में लगने वाले गेहूं के मुख्य रोग हैं। बालियों के पकने के समय गर्म हवाओं के कारण दाने सिकुड़ने की समस्या भी कुछ समय से दृष्टिगत हो रही है। पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, पश्चिमी उत्तर प्रदेश (झांसी संभाग को छोड़कर), राजस्थान (कोटा व उदयपुर को छोड़कर) जम्मू कश्मीर के जम्मू एवं कठुआ संभाग, हिमाचल प्रदेश की उना एवं पौंटा घाटी एवं उत्तराखंड के तराई क्षेत्र इस क्षेत्र में आते हैं।

इस क्षेत्र में सिंचाई की उपलब्धता होने के कारण मुख्यतः सिचिंत गेहूं की खेती समय से बुवाई एवं देर से (पछेती) बुवाई अवस्था में की जाती है। कुछ क्षेत्रों में जल की उपलब्धता सीमित होने के कारण सीमित सिंचाई अवस्था में भी गेहूँ की खेती की जाती है। सीमित सिंचाई अवस्था में पलेवा करने के पश्चात बुवाई की जाती है और आवश्यकतानुसार एक सिंचाई फसल बुवाई के 21 दिन बाद की जाती है। पानी की कम उपलब्धता के कारण सीमित सिंचाई की जाती है। जल की शेष आपूर्ति फसल के दौरान होने वाली वर्षा से उपलब्ध जल पर निर्भर करती है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अंतर्गत दिल्ली स्थित भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान का आनुवंशिकी संभाग, गेहूं अनुसंधान एवं प्रजाति विकसित करने में एक अग्रणीय रहा है। इस संस्थान द्वारा उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों के लिए वर्ष 2018–19 में गेहूं की तीन नवीनतम प्रजातियों का विकास किया गया है जिनको भारत सरकार की कृषि फसलों के लिए फसल मानक, अधिसूचना एवं विमोचन की केंद्रीय उप–समिति द्वारा इस वर्ष बुवाई के लिए विमोचित एवं अधिसूचित किया गया है। इन प्रजातियों का विवरण निम्न प्रकार से है :–

एच.डी.3226 (पूसा यशस्वी)

समय से बुवाई एवं सिंचित अवस्था के लिए विमोचित इस प्रजाति की औसत उपज 5.75 टन प्रति हेक्टेयर है

और उपज क्षमता 7.96 टन प्रति हेक्टेयर है। पीला, भूरा, एवं काला रतुआ रोगरोधी इस प्रजाति में करनाल बंट, चूर्णित असिता, पर्ण कंडुआ आदि रोगों के लिए आनुवंशिकि रोगरोधिता है। इस प्रजाति के पौधे 105 सेमी ऊचांई लिए पकने में 140–145 दिन का समय लेते हैं। इसके दानों में प्रोटीन की अधिक मात्रा 12.8% एवं शुष्क गलूटन 10.10 प्रतिशत है। ग्लू स्कोर 10:10 एवं ब्रेड गुणवत्ता स्कोर 6.7 है। यह प्रजाति चपाती एवं ब्रेड बनाने के लिए उपयुक्त पाई गयी है।

पूसा गेहूं 3237(एच.डी. 3237)

समय से बुवाई एवं सीमित सिंचाई अवस्था में बुवाई के लिए अनुमोदित इस प्रजाति की उपज 4.91 टन प्रति हेक्टेयर है। इसके पौधे 95–105 सेमी ऊचांई, तथा पकने की अवधि 140–145 दिन की है। पीले रतुआ रोग रोधी इस प्रजाति की चपाती गुणवत्ता स्कोर(7.98) एवं बिस्कुट गुणवत्ता स्कोर(8.0) है। यह प्रजाति चपाती एवं ब्रेड बनाने के लिए उपयुक्त पाई गई है।

पूसा गेहूं 1620 (एच.आई.1620)

सीमित सिंचाई एवं समय से बुवाई अवस्था के लिए इस प्रजाति की औसत उपज 4.91 हेक्टेयर और अधिकतम उपज क्षमता 6.28 टन प्रति हेक्टेयर है। उत्तम गुणवत्ता वाली इस प्रजाति का चपाती गुणवत्ता स्कोर 7.52, बिस्कुट गुणवत्ता स्कोर 6.82, प्रोटीन की मात्रा 11.9% एवं ग्लू स्कोर 10:10 है। इस प्रजाति के पौधे 99 सेमी. उचांई लिए होते हैं। यह प्रजाति फूल आने एवं पकने के क्रमशः 95 एवं 146 दिन की अवधि का समय लेती है। यह प्रजाति चपाती एवं ब्रेड बनाने के लिए उपयुक्त है।

संस्थान द्वारा इस क्षेत्र के लिए विगत वर्षा में विकसित एवं अनुमोदित अन्य प्रजातियां निम्न प्रकार हैं

उत्पादन अवस्था	प्रजातियां
समय से बुवाई, सिंचित अवस्था	एच.डी. 2967, एच.डी. 3086 एच.डी.2894 (एन.सी.आर. क्षेत्र हेतु)
देरी से बुवाई सीमित सिंचित अवस्था	एच.डी. 3059
समय से बुवाई सिचिंत अवस्था	एच.डी.3043
बहुत देर से सिचिंत अवस्था	डब्ल्यू. आर. 544 (पूसा गोल्ड) (एन.सी.आर. क्षेत्र)
संरक्षित उत्पादन अवस्था (एन.सी.आर. क्षेत्र)	
शीघ्र बुवाई सिंचित अवस्था	एच.डी.सी.एस. डब्ल्यू. – 18
देर से बुवाई सिंचित अवस्था	एच.डी. 3117

समय पर बुआई के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित भारतीय सरसों की उन्नत प्रजातियां

राजेन्द्र सिंह, नवीन सिंह एवं यशपाल
आनुवंशिकी संभाग
भा.कृ.अ.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

भारत के कुल खाद्य तेल उत्पादन मे लगभग एक तिहाई राई–सरसों की फसल से प्राप्त होता है। सोयाबीन के बाद क्षेत्रफल एवं उत्पादन की दृष्टि से इस फसल का दूसरा स्थान है। इस फसल का कुल क्षेत्रफल 5.80 मिलियन हेक्टेयर एवं कुल उत्पादन 6.28 मिलियन टन है। यह फसल कम लागत मे अधिक लाभ देने वाली है। भारत मे उगाई जाने वाली राई–सरसों की फसल के कुल क्षेत्रफल का लगभग 24.0% भाग वर्षा पर आधारित है।

भारत के पाँच राज्यों, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, मध्य प्रदेश एवं पश्चिमी बंगाल में देश के कुल राई–सरसों क्षेत्रफल का 82.00% एवं कुल उत्पादन का 85.67% योगदान है। इस फसल के विषय मे यह उल्लेख करना जरूरी है कि इस फसल के उत्पादन के लिए जल की मांग अन्य फसलों कि तुलना मे काफी कम (80–240 मी. मी.) है। मध्य प्रदेश में इस फसल के कुल क्षेत्रफल का लगभग 53.2% सिंचित है एवं औसत पैदावार 1006 किग्रा/हेक्टेयर है जब कि देश के कुल क्षेत्रफल का लगभग 76.6% भाग सिंचित है किन्तु औसत पैदावार अभी भी 1083 किग्रा. प्रति हेक्टेयर ही है। अनुसंधान प्रयोगों से यह पाया गया है की राई–सरसों की औसत उपज को 27–38 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है। इसमे सबसे महत्व–पूर्ण घटक उन्नत प्रजातियों का चयन एवं उनके बीज की आपूर्ति है। भारत मे उगाई जाने वाली राया–सरसों के कुल क्षेत्रफल का लगभग 80 प्रतिशत भारतीय सरसों ही है। इस फसल की खेती विगत वर्षों में दक्षिणी भारतीय राज्यों जैसेकि कर्नाटक, तमिलनाडू एवं आंध्रप्रदेश के अ–परम्परागत क्षेत्रों मे भी बढ़ी है।जिसका कारण इस फसल की सूखा एवं अधिक तापक्रम सहनशीलता, विभिन्न फसल चक्र अनुकूल, 100 दिन से लेकर 152 दिन की अवधि वाली प्रजातियों की उपलब्धता, रोगों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता का आमतौर पर अधिक होना, एक साथ पकना, पकने के समय खेत मे नहीं झड़ना एवं अधिक औसत पैदावार हैं।

भारत के विभिन्न प्रदेशों की जलवायु एवं भूमि मे काफी विभिन्नता है। इस तथ्य को ध्यान मे रखते हुए विभिन्न क्षेत्रो की कृषि–जलवायु के आधार पर सरसों उगाये जाने वाले भूभाग को पाँच क्षेत्रो में विभाजित किया गया है। विभिन्न क्षेत्रों की कृषि–जलवायु के अनुसार ही भारतीय सरसों कि उन्नत प्रजातियों का विकास किया गया है एवं क्षेत्रवार ही प्रजातियों का विमोचन किया जाता है।यह जानना आवश्यक है कि अभी भी उन्नत प्रजातियों की क्षमता के अनुरूप प्रति इकाई क्षेत्र से उचित पैदावार प्राप्त नहीं की जा सकी है जिसके मुख्य कारण निम्न है।

1. अधिक उपज देने वाली उन्नत प्रजातियां उपलब्ध होने के बावजूद अभी भी पुरानी प्रजातियों का ही प्रचलन में होना।
2. क्षेत्र विशेष के लिए विकसित एवं विमोचित प्रजातियों का संस्तुत क्षेत्रों मे नही बोया जाना।
3. उन्नत प्रजातियों का उचित समय पर बुआई न होना।
4. फसल चक्र अनुकूल विकसित प्रजातियों का न बोया जाना।
5. लवणता एवं अम्लता से प्रभावित भूमियों मे इनके प्रति सहनशील प्रजातियों का न बोया जाना।
6. उच्च गुणवत्ता वाले बीज की उपलब्धता न होना।
7. समय से रोग, कीट एवं खरपतवार का नियंत्रण न होना।
8. सिंचाई की उचित सुविधा या सिंचाई जल की गुणवत्ता ठीक न होना।

उपरोक्त कारणों में से कुछ को तो केवल प्रजातियों के सही चयन द्वारा ही दूर किया जा सकता है,जो कि उत्पादन बढ़ाने में मील का पत्थर सिद्ध हो सकता है। इस तथ्य को मद्दे–नजर रखते हुए इस लेख में प्रजातियों के सही चयन के लिए राह दिखने कि कोशिश कि गई है। सामान्य समय पर बोई जाने वाली प्रजातियाँ अक्तूबर के मध्य मे बोई जाती हैं। इनकी परिपक्वता अवधि 130–145 दिन होती है। भारतीय–सरसों की इन प्रजातियों को, विशिष्ट अनुकूलन एवं तेल की गुणवत्ता के अनुसार दो भागों में बांटा गया है। भा.कृ.अ.स., नई दिल्ली द्वारा विकसित एवं अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना द्वारा 1984–85 से अनुमोदित उन्नत प्रजातियों का विवरण निम्नवतः है।

(अ). सामान्य गुणवत्ता वाली प्रजातियाँ

प्रजाति	परिपक्वता अवधि (दिन)	तेल की मात्रा (%)	औसत पैदावार (कु./है.)	संस्तुत क्षेत्र	मुख्य विशेषताएँ
पूसा बोल्ड	140	40	19.0	देश मे सरसों उगाने वाले सभी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त	मोटा दाना
पूसा जयकिसान	120	42	22.00	प. राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र	सामान्य एवं पिछेती बुआई
पूसा जगन्नाथ	112–138	37–43	1605 से –1975	म.प्र., राजस्थान एवं उ. प्र.	सिंचित क्षेत्रों मे सामान्य बुआई हेतु
पूसा विजय (एन पी जे –93)	135–154	35–41	1870 से 2715	राष्ट्रिय राजधानी क्षेत्र एवं दिल्ली	

(ब). तेल की उच्च गुणवत्ता वाली प्रजातियाँ: तेल में वसा अम्लों का अनुपात एवं खली में ग्लूकोसीनोलेट की मात्रा गुणवत्ता को मुख्यतः निर्धारित करते हैं। इन प्रजातियों से प्राप्त तेल में इरुसिक अम्ल की मात्रा 2 प्रतिशत से कम होती है, जिससे वयस्कों में मायोकार्डियल फाइब्रोसिस एवं बच्चों में लिपिडोसिस जैसी बीमारियों की संभावना कम हो जाती हैं। इन प्रजातियों से प्राप्त खली की गुणवत्ता अच्छी होती है।

प्रजाति	परिपक्वता अवधि (दिन)	तेल की मात्रा (%)	औसत पैदावार (कि.ग्रा./है.)	संस्तुत क्षेत्र	मुख्य विशेषताएँ
पूसा करिश्मा (एल.ई.एस. –39	145	38	22.0	राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली	कम ईरुसिक अम्ल (<2%)
पूसा सरसों–21 (एल ई एस1–27)	137–152	34–40	1428 से 2277	दिल्ली, हरियाणा, जम्मू एवं कश्मीर के मैदानी भाग,पंजाब, राजस्थान एवं पश्चिमी उ. प्र.	कम ईरुसिक अम्ल (<2%)
पूसा सरसों–22 (एल ई टी–17)	142	35.5	20.7	राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली	कम ईरुसिक अम्ल (<2%)
पूसा सरसों–24 (एल ई टी–18)	134–150	32–39	1995 से 2044	दिल्ली, हरियाणा, पंजाब एवं राजस्थान का कुछ भाग	कम ईरुसिक अम्ल (<2%)
पूसा सरसों–29 (एल ई टी –36)	143	37	2169	दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, जम्मू एवं राजस्थान का उत्तरी भाग	कम ईरुसिक अम्ल (<2%)
पूसा सरसों–30 (एल ई एस–43)	137	36–39	1824	म. प्र., उ. प्र.,उत्तराखंड एवं पूर्वी राजस्थान	कम ईरुसिक अम्ल (<2%)

पूसा सरसों–31	144	40	2518	राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली	ईरूसिक अम्ल रहित, ग्लूकोसीनोलेट <30 माइक्रोमोल / 100 ग्रा खली

किसी भी फसल की भरपूर उपज लेने के लिए कृषि–जलवायु क्षेत्र विशेष के लिए जारी की गई प्रजाति का चुनाव, बोने की विधि, जल प्रबंध एवं साथ ही साथ मृदा–परीक्षण के उपरांत की गई पोषक तत्वों की संस्तुति का सबसे ज्यादा महत्व है । जिस स्थान पर तापक्रम कम रहता है वहाँ पर पौध की तेज बढ़वार, उचित मूल विकास, त्वरित मृदा–आच्छादन एवं जल्दी पुष्पन युक्त गुणों वाली प्रजातियों का चुनाव करना चाहिए। यदि फसल को उचित समय से बोया गया है तथा प्रति इकाई क्षेत्र मे पौधों की संख्या उचित है तो उचिततम उपज प्राप्त की जा सकती है।

उत्पादन प्रौद्योगिकीः

बुआई के समय का फसल की उपज पर बहुत प्रभाव पड़ता है। अतः जिस प्रजाति को जिस समय पर बोने की संस्तुति की गई है उसे उसी समय पर बोया जाना चाहिए। जिन क्षेत्रों में बुआई के समय तापमान अधिक रहता है वहाँ पर केवल उच्च तापमान सहनशील प्रजातियों को ही बोया जाना चाहिए।विश्वसनीय स्रौत से बीज खरीदें एवं रसीद को संभाल कर रखें। हमेशा साफ एवं स्वस्थ बीज का प्रयोग करें। बीज की बुआई की विधि का फसल की उपज पर सीधा प्रभाव पड़ता है। सामान्य एवं संरक्षित नमी वाली अवस्था मे बीज को पंक्ति विधि द्वारा उचित गहराई पर बोया जाना चाहिए। यदि भूमि लवणीय प्रभाव वाली है तो मेंड़ पर बीज बोने से उचित अंकुरण होता है।

बुआई का समय : इस फसल की बुवाई मध्य अक्तूबर में करें एवं बुआई के समय खेत मे उचित नमी होनी चाहिए।

बीज की मात्रा : 3.5–4.5 किग्रा प्रति हेक्टेयर बीज पंक्तियों में बोया जाना चाहिए।

बीज उपचार : सफेद रोली से बचाव के लिए परान 35 एस. डी 6 ग्रा. या बाविस्टीन 2 ग्रा. प्रति किग्रा. बीज की दर से उपचार करें।

उर्वरक : मृदा परीक्षण कराके मृदा स्वास्थ्य कार्ड की संस्तुति के अनुसार उर्वरक की मात्रा दें। वर्षा–आधारित फसल मे उर्वरकों की मात्रा आधी कर दें।उर्वरक को बीज के साथ मिलाकर नहीं डालना चाहिए ऐसा करने से अंकुरण पर बुरा प्रभाव पड़ता है।उर्वरकों की मात्रा निमन्वत हैः

नत्रजन=60–80 किग्रा. / हेक्टेयर
फास्फोरस=40 किग्रा. / हेक्टेयर
पोटाश= 40 किग्रा. / हेक्टेयर
गंधक= 40 किग्रा. / हेक्टेयर

तिलहन वाली फसलों में राई–सरसों की गंधक की जरूरत सबसे अधिक है। गंधक से तेल की मात्रा में वृद्धि होती है साथ ही साथ यह प्रोटीन, अमीनो–अम्ल, एंजाइम, ग्लूकोसीनोलेट एवं पर्णहरित का अभिन्न घटक है। फॉस्फोरस उर्वरक सिंगल सुपर फॉस्फेट के रूप मे दिया जाना चाहिये क्योंकि इससे गंधक भी उपलब्ध हो जाती है। यदि सिंगल सुपर फॉस्फेट उपलब्ध नहीं है तो गंधक उर्वरक की संस्तुत मात्रा अवश्य ही खेत की तैयारी के समय दी जानी चाहिए।

अंतरालः बीज की बुवाई हमेशा पंक्तियों में की जानी चाहिए। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 सेमी. एवं पौधे से पौधे की दूरी 10–15 सेमी. तथा बुआई की गहराई 1.5–2.0 सेमी. रखें।

छंटाई : बुआई के 15–20 दिन बाद या प्रथम सिंचाई से पूर्व छंटाई कर पौधे से पौधे की दूरी 10–15 सेमी. कर दें।

सिंचाईः राया की फसल नमी की कमी के प्रति, फूल आने एवं दाना भरने की अवस्थाओं पर संवेदनशील होती है अतः इन दोनों अवस्थाओं पर सिंचाई अवश्य कर देनी चाहिये। आम–तौर पर दो से तीन सिंचाई की संस्तुति की गई है।

पौध संरक्षणः सरसों की फसल को कई रोग एवं कीट नुकसान पहुँचते हैं जिनके प्रबंधन के लिए किसानो को बुआई से लेकर कटाई तक फसल की सावधानीपूर्वक देखरेख करनी चाहिए। फसल में कीट एवं रोग–नाशियों

का जरूरत पड़ने पर ही छिड़काव करना चाहिए।

सफेद रोली रोगः बीज उपचार के अलावा बुआई से 50–60 दिन बाद या बीमारी के लक्षण दिखाई देते ही फंफूदनाशक दवा रिडोमिल एम जेड 72 डब्लू. पी. का 2 ग्रा./लीटर पानी की दर से 500–800 लीटर पानी/हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें, यदि जरूरत हो तो 15 दिन बाद दूसरा छिड़काव करें।

झुलसा रोगः रोग के लक्षण दिखने पर केप्टाफाल (फोलटाफ)/मेंकोजेब/जीनेब/कापर आक्सीक्लोराइड 2 ग्रा./लीटर पानी के हिसाब से 500–800 लीटर पानी प्रति हेक्टेयर की दर से 10–12 दिन के अन्तराल पर दो छिड़काव करें।

छाछिया रोगः कैराथियान एल. सी. 200 मिली. या गंधक चूर्ण 20 किग्रा. या घुलनशील गंधक 2.5 किग्रा./हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें।

बगराड़ा, टिड्डा व पत्ती काटने वाले कीड़ेः तीन पत्तों की अवस्था में 5 प्रतिशत मैलाथियान 25 किग्रा./हेक्टेयर की दर से बुरकाव करें। कीटनाशक धूल का बुरकाव सुबह के समय जब औस पड़ी हो तब करें।

बगराड़ा एवं आरा मक्खीः डाइ मेथोएट 30 ई.सी./मिथाइल डिमेटोन 25 ई.सी./क्यूनलफास 25 ई.सी./थायामिडान 25 ई.सी. 1000 मिली./फास्फोमिडान 85 डब्लू.एस.सी. 250 मिली./मैलाथीयान 50 ई.सी. 1250 मिली. प्रति हेक्टेयर की दर से 500–800 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

सरसों का चेंपा या एफिडः यदि 10 प्रतिशत पौधों मे प्रति पौधा 20–30 एफिड दिखाई दें तो निम्नलिखित में से किसी भी एक कीटनानी का छिड़काव करें:

- आक्सीड़ेमिटोन मीथाईल 25 ई सी 1000 मिली. 500 लीटर पानी प्रति हेक्टेयर
- क्यूनलफास 25 ई. सी. 1000 मिली. 500 लीटर पानी प्रति हेक्टेयर
- क्लोरोपाइरीफोस 20 ई. सी. 600 मिली. 500 लीटर पानी प्रति हेक्टेयर

खरपतवार नियंत्रण : एक से दो निराई–गुड़ाई अवश्य करें।

पकने के बाद यदि फसल खेत मे ज्यादा दिन तक खड़ी रहे तो झड़ने का ड़र रहता है अतः फसल की समय रहते ही कटाई कर लेनी चाहिए।अधिकतम उपज हेतु भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के विभिन्न संस्थानों एवं कृषि विश्व–विद्यालयों द्वारा विकसित प्रजातियों को संस्तुत क्षेत्रों मे ही लगाया जाना चाहिए एवं संस्तुति के आधार पर फसल प्रबंधन द्वारा सरसों की उचित पैदावार लेकर किसान अधिक लाभ कमाने के साथ ही देश को खाद्य तेलों मे आत्म निर्भर बना सकते हैं।

चने की उत्पादकता बढ़ाने का उत्तम विकल्प–उन्नत बीज

ज्ञानेन्द्र सिंह, चन्दू सिंह एवं रमेश चन्द
बीज उत्पादन इकाई,
भा.कृ.अ.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–12

चना (*साइसर अरेटीनम*) भारत की प्रमुख दलहनी फसल है। इसका उत्पत्ति स्थान दक्षिण पश्चिमी एशिया–अफगानिस्तान या एशिया में माना जाता है। यह प्रोटीन का सस्ता और मुख्य साधन है। चने में पोषक पदार्थ जैसे प्रोटीन 18.22%, कार्बोहाइड्रेट 61–62%, वसा 4.5% तथा खनिज पद्यार्थ जैसे कैल्सियम, फॉस्फोरस तथा लौह क्रमशः 280, 301 तथा 12.3 मिलीग्रा. प्रति 100 ग्रा. पाये जाते हैं। इसकी हरी पत्तियों में मैलिक तथा सायट्रिक एसिड पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं जो खून को साफ करने तथा स्कर्वी रोग के निवारण में लाभदायक होता हैं चना मधुमेह तथा हृदय सम्बन्धी रोगों के निवारण में लाभदायक है क्योंकि इसमें एन्टीडायबिटीज तथा एन्टी कोलस्ट्रोल गुण पाये जाते हैं।दलहनी फसलों का अधिकांश उत्पादन असिंचित क्षेत्रों (लगभग 92%) मे किया जाता हैं भारत में 17–19 मिलियन मैट्रिक टन दालों का उत्पादन होता है जबकी आवश्यकता 20 से 23 मिलियन मैट्रिक टन की है। लगभग 5–6 मिलियन मैट्रिक टन प्रतिवर्ष दालों का आयात करना पड़ता है (ग्लोबाल पल्स सिनेरियो 2016) । संसार में चने का कुल क्षेत्रफल 13.57 मिलियन हेक्टेयर, उत्पादन 13.12 मिलियन टन तथा उत्पादकता 967 किग्रा0 प्रति हेक्टेयर है (एफ ए ओ स्टेटिसटिक्स 2013) जबकि भारत में वर्ष 2015–16 के दौरान चने का कुल क्षेत्रफल 8.35 मिलियन हेक्टेयर,उत्पादन 7.17 मिलियन टन तथा उत्पादकता 859 किग्रा. प्रति हेक्टेयर है (साख्यिकी एवं आर्थिक निदेशालय भारत सरकार)। संसार में मुख्यतः चना–भारत, आस्ट्रेलिया, टर्की, मियांमार, पाकिस्तान,मैक्सिको तथा इथोपिया में कुल उत्पादन का 90% पैदा किया जाता है। चने के क्षेत्रफल तथा उत्पादन में भारत का विश्व में प्रथम स्थान हैं। विश्व में सर्वाधिक उत्पादकता 6120 किग्रा0 प्रति हेक्टेयर इजराइल में है। इजराइल के बाद उत्पादकता में यमन, कनाडा, इजिप्ट का स्थान है। भारत में 95% चने का उत्पादन मध्यप्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र,उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रेदश, कर्नाटक, छत्तीसगढ़, बिहार तथा झारखंड़ में होता हैं भारत में कुल उत्पादन का 40% उत्पादन के साथ मध्यप्रदेश प्रथम स्थान पर है इसके बाद राजस्थान, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश तथा आन्ध्र प्रदेश में कुल उत्पादन का क्रमशः 14%, 10%, 9% तथा 7% उत्पादन होता है।वर्ष 2014–15 तथा 2015–16 में कुल दलहन के निर्यात में चने का भाग क्रमश 85.64% तथा 84.87% का (स्रोत वाणिज्यक विभाग, भारत सरकार) भारत विश्व का प्रमुख चना उत्पादक देश होते हुए भी विकसित देशों में चने की उत्पादकता से काफी पीछे है। देश में बढ़ती दलहन की मांग को देखते हुए तथा आयात को कम करने के लिए चने की उत्पादकता बढ़ाना अति आवश्यक है। उन्नत प्रजातियों का उन्नत बीज पैदा करके तथा किसानों में कम कीमत पर वितरित करके चने की उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है तथा भूमि की उर्वराशक्ति में भी वृद्धि की जा सकती है। चने की फसल से अपने जीवन काल में सामान्यतः 30 किग्रा0 नत्रजन प्रति हेक्टेयर भूमि में स्थिर होती है। गुणवत्ता बीज किसान की समृद्धि का मूल आधार है। नवीनतम आंकड़ों के हिसाब से चने में बीज विस्थापन दर बहुत कम (9.54 प्रतिशत) है । इस समस्या के समाधान के लिए किसान स्वयं ही उन्नत बीज उत्पादन कर सकते हैं तथा बीज विस्थापन दर को बढ़ा सकते हैं।

जलवायु : चने की उत्तम फसल के लिए समशीतोष्ण जलवायु उपयुक्त रहती है। पौधों की वृद्धि के समय वायुमण्डल का तापक्रम कम तथा फली के परिपक्व होने के समय तापक्रम अधिक होना चाहिए। चने की फसल के लिए 24–32^0 सेल्सियस तापक्रम उपयुक्त है। अधिक वर्षा अंकुरण तथा फूल आने की अवस्था में हानि पहुंचाती है। अधिक वर्षा के कारण फूलों का निषेचन कम होने के कारण फलियाँ कम लगती हैं तथा फसल की अधिक बढ़वार के कारण कीट एवं बीमारियों का प्रकोप बढ़ जाता है तथा पौधों की शाखायें लम्बी होने के कारण आपस में लिपट जाती हैं

जिसके कारण काटते समय फलियों के झड़ने से पैदावार में कमी आती है । चने की फसल में बढ़वार के समय पाला पड़ने से हानि होती है। कम तापक्रम होने से अंकुरण तथा परागण में विपरीत प्रभाव पड़ता है।

मृदा एवं तैयारी : चने का बीज उत्पादन के लिए दोमट या भारी दोमट मिट्टी जिसमें जल निकास तथा जल धारण क्षमता अधिक हो तथा पी.एच. 7–7.5 के बीच हो, अच्छी मानी जाती हैं। खेत की तैयारी के लिए मिट्टी पलट हल या हैरो से दो गहरी जुताई करके दो जुताई कल्टीवेटर से करनी चाहिए और प्रत्येक जुताई के बाद पाटा लगाकर खेत को समतल कर देना चाहिए ताकि खेत में नमी बनी रहे। बुवाई के लिए उचित नमी को बनाये रखने हेतु प्रथम दो गहरी जुताई के बाद पाटा लगाकर पलेवा करना चाहिए।

प्रजातियॉः– पूसा संस्थान द्वारा निकाली गई चने की प्रमुख देशी तथा काबुली प्रजातियो का विवरण सारणी 1 में दर्शाया गया है तथा अन्य प्रमुख प्रजातियों का विवरण सारणी 2 में दर्शाया गया है।

देशी प्रजातियॉ : भारत के अधिकांश क्षेत्रों में देशी चना या काला चना उगाया जाता है। इसका बीज चोल काले, लाल या भूरे रंग का होता है। इनके पौधे सीधे, छोटे और अधिक शाखित होते हैं। इन प्रजातियों में लाल रंग का फूल आता है।

काबुली या सफेद प्रजातियॉः इनका क्षेत्र देशी चने से कम है। इसका बीज चोल सफेद रंग का होता है। इसके पौधे फैलाव वाले, लम्बे और कम शाखित होते हैं। इन प्रजातियों के फूल का रंग सफेद होता है। इनकी पैदावार देशी प्रजातियों की तुलना में कम होती है।

सारणी 1: पूसा संस्थान द्वारा निकाली प्रमुख प्रजातियॉ

प्रजाति का नाम	अनुमोदन वर्ष	उपयुक्त क्षेत्र	पैदावार कु./है0	पौधो की उँचाई (सेमी0)	1000 दानों का वजन (ग्राम)	पकने की अवधि (दिन)	अन्य विवरण
पूसा–256 (देशी)	1985	सम्पूर्ण भारत	22–30	61.5	310	180	सिंचित– असिंचित, समय से तथा देर से बुवाई हेतू।
पूसा–372 (देशी)	1993	सम्पूर्ण भारत	18–22	52.0	130	175	पछेति, हल्के, छोटे तथा पीले दाने वाली, बीमारियों के प्रतिरोधी
पूसा–362 (देशी)	1994	उत्तर भारत	25–30	89.6	290	185	दाना मध्यम हल्का पीला, जड़ गलन एवं सूत्रकृमि प्रतिरोधी
पूसा–391 (देशी)	1996	मध्य भारत	20–25	71.3	380	185	दाने मोटे सुडोल, हल्के भूरे, सिंचित– असिंचित क्षेत्र
पूसा–72 (देशी)	1998	मध्य भारत	22–28	61.7	310	175	दाने मोटे हल्के भूरे, जड़ गलन तथा सूखा रोधी एवं सिंचित– असिंचित क्षेत्र
पूसा–1103 (देशी)	2004	दिल्ली	20–24	77.7	370	180	मोटे दाने, पछेति सिंचित– असिंचित तथा उक्ठा प्रतिरोधी
पूसा–547 (देशी)	2006	उत्तरी एवं पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	18–22	65.92	330	140	पछेति,उक्ठा प्रतिरोधी,दाने मोटे सुनहरी,सिंचित–असिंचित
पूसा 5028 (देशी)	2011	एन सी आर दिल्ली	26.00	55.00	350–400	136	उक्टा की आंशिक प्रतिरोधी तथा सिंचित–असिंचित क्षेत्र
पूसा–1053 (काबुली)	1998	उत्तर भारत	25–30	61.5	360	180	मोटे दाने, उक्ठा एवं जडगलन प्रतिरोधी

पूसा–1088 (काबुली)	2003	दिल्ली	20–30	74.9	330	180	दाने मोटे सुडोल, उक्ठा, जड़गलन विषाणु रोग प्रतिरोधी
पूसा–1105 (काबुली)	2004	दिल्ली	25–30	74.9	330	180	दाने मोटे सिंचित–असिंचित समय व पछेति बुवाई हेतु
पूसा–1003 (काबुली)	1998	सम्पूर्ण भारत	15–23	77.7	250	180	दाने मध्यम, उक्ठा एवं जड़ गलन प्रतिरोधी
पूसा 5023 (काबुली)	2011	एन सी आर दिल्ली	25.00	65.00	400–450	138	दाने बड़े, अगेति ओजता पूर्ण उक्ठा की मध्यम प्रतिरोधी
पूसा 1108 (काबुली)	2006	एन सी आर दिल्ली	25–30	74.90	330	180	दाने मोटे एक समान, सिंचित मृदाजनित रोगो के प्रतिरोधी
पूसा 2024 (काबुली)	2008	एन सी आर दिल्ली	30.00	65.00	370	180–185	सिंचित–असिंचित, फली छेदक तथा मृदाजनित रोग प्रतिरोधी

बीज खरीदने की मुख्य बातें: बीज विश्वसनीय स्रोत जैसे भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, कृषि विश्व विद्यालय, राष्ट्रीय बीज निगम, राज्य बीज निगम आदि से खरीदना चाहिए। खरीदते समय प्रजाति विशेष के गुणों की जानकारी एवं उत्पादन तकनीक भी प्राप्त करनी चाहिए। निश्चित क्षेत्र के लिए अनुमोदित किस्म का ही बीज खरीदना चाहिएं। आधार तथा प्रमाणित बीज पैदा करने के लिए क्रमशः प्रजनक एवं आधार ही लेना चाहिए। बीज की रसीद जरूर लें एवं उत्पादन तक सम्भाल कर रखें तथा उत्पादन फसल गुणों के अनुरूप न होने पर विक्रेता से मिलना चाहिए। विक्रेता से संतुष्टी न होने पर कानूनी सहारा लेना चाहिए। प्रमाणित तथा सत्य बीज के उपर नीला और प्रजनक बीज पर पीला टैग होना चाहिए। टैग के उपर लिखी सभी सूचनाये जैसे अनुवांशिक शुद्धता, भौतिक शुद्ध ता, लॉट संख्या, उत्पादक का नाम, अंकुरण प्रतिशत, बीज का वजन एवं प्रयोग करने की तिथि एवं बीज के निरस्त होने की तिथि आदि ध्यान पूर्वक पढ़नी चाहिए। प्रजाति का चुनाव करते समय क्षेत्र विशेष की जलवायु, मृदा की स्थिति,प्रजाति की उपज,प्रजाति के बढ़ने की प्रवृति, प्रजाति की अवधि, कीट एवं बीमारियों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता, प्रजाति की भण्डारण क्षमता सिंचित एवं असिंचित स्थिति फसल चक्र,दाने का आकार तथा प्रजाति के बाजार भाव का ध्यान में रखना चाहिए।

बुवाई का समयः बुवाई का समय प्रजातियों एवं क्षेत्र विशेष की जलवायु के आधार पर करना चाहिए। सामान्यतः समय पर चने की बुवाई 25 अक्टूबर से 10 नवम्बर तथा पछेती बुवाई 16 से 30 नवम्बर तक उत्तरी पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों में करना चाहिए।

बीज दरः–काबुली प्रजातियों के लिए सामान्यतः 80–100 किग्रा., मोटे दाने वाली देशी प्रजातियों के लिए 70–80 किग्रा. तथा बारीक दाने वाली देशी प्रजातियाँ के लिए 50–60 किग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त रहता है। बीज फसल की बुवाई लाइनों में करनी चाहिए क्योंकि लाइनों में बोने से पौधे समान दूरी में होते हैं तथा निराई गुडाई व रोगिंग करने में आसानी रहती है । लाइन से लाइन की दूरी 30 सेमी. तथा पौधे से पौधे की दूरी काबुली प्रजातियों के लिए 5–7 सेमी0 और देशी प्रजातियों के लिए 7–10 सेमी0 रखनी चाहिए तथा बीज 7–10 सेमी0 गहरा बोना चाहिए। बुवाई से पूर्व सीडड्रिल का कैलिब्रेशन अवश्य करना चाहिए ताकि बुवाई हेतु बीज की सही मात्रा खेत में प्रयोग की जा सके।

बीज शोधन एवं उपचारः बोने से पूर्व सर्वप्रथम बीज से अन्य रंगो के दाने, बीमारी ग्रस्त दानें तथा बहुत छोटे दाने निकालने चाहिए। इसके बाद बीज उपचारित करना चाहिए जिससे खड़ी फसल में रोग तथा कीटों का आक्रमण कम होता है साथ ही बीज की गुणवत्ता बढ़ जाती है एवं फसल की लागत में कमी होती है। बीज उपचार के लिए सर्वप्रथम कवकनाशी थाइरम या बावस्टिन की 2.5 ग्राम मात्रा प्रति किग्रा. बीज की दर से उपचार करना चाहिए।

तत्पश्चात् बीज को दीमक से बचाने के लिए कीटनाशक जैसे क्लोरोपाइरोफॉस 2 मिली. प्रति किग्रा. बीज की दर से उपचार करके छाया में सुखा लें। बुवाई से 24 घण्टे पूर्व राइजोबियम जीवाणु से उपचारित करना चाहिए। इसके लिए एक लीटर पानी में 100 ग्राम गुड़ उबालकर ठण्डा कर लें 200 ग्राम राइजोबियम जीवाणु को इस गुड़ के घोल में मिलाकर 30–35 किग्रा. बीज मे अच्छी तरह मिलाएं फिर उपचारित बीज को छायां में सुखाकर बुवाई करनी चाहिए। इस प्रकार बीज पर राइजोबियम जीवाणु की एक पतली परत चढ़ जाती है। चने की फसल मे फॉस्फोरस की उपलब्धता बढाने के लिए पी.एस.बी. जीवाणु का उपचार भी लाभदायक है ।

खाद एवं उर्वरकः चने की फसल को 15 –20 किग्रा. नत्रजन तथा 45–50 किग्रा. फॉस्फोरस प्रति हेक्टेयर आवश्यक है जिसकी पूर्ति के लिए 100 किग्रा. डी.ए.पी. प्रयाप्त है तथा 25 किग्रा. सल्फर प्रति हेक्टेयर अन्तिम जुताई के समय या बीज के साथ सीड ड्रिल के द्वारा जड़ क्षेत्र में डालना चाहिए। सीडड्रिल से उर्वरक डालते समय इस बात का ध्यान रखें की सल्फर दानेदार हो। जड़ क्षेत्रों में उर्वरकों का प्रयोग लाभदायक रहता है तथा श्रम की बचत होती है। उर्वरकों का प्रयोग छिटककर करने से उर्वरकों का अधिकांश प्रयोग खरपतवार कर लेते हैं जिससे खरपतवार निकालने में अधिक श्रम लगने के कारण तथा उर्वरकों के व्यर्थ प्रयोग से धन की हानि होती है तथा पैदावार भी कम मिलती है।

सिंचाईः चने की फसल को सामान्यतः बहुत कम पानी की आवश्यकता होती है। इसकी जड़ें गहरी होने के कारण यह गहराई से पानी सोखने में सक्षम होती है। सामान्यत आवश्यकता पड़ने पर पुष्पावस्था से पहले बुवाई के 45–50 दिन बाद तथा फली बनने के समय बुवाई के 80–90 दिन बाद हल्की सिंचाई करनी चाहिए। फूल आने के समय सिंचाई न करें अन्यथा फूल आने बन्द हो जाते हैं तथा बढ़वार अधिक होने से फलियाँ कम लगती हैं और फसल गिर जाती है, जिससे बीज की पैदावार तथा गुणवत्ता भी प्रभावित होती है।

निपिंगः जब पौधे लगभग 20–30 सेमी. उंचे हो जायें तो उनकी शाखाओं की ऊपरी कली को तोड़ देने से अधिक शाखाएं निकलती हैं। जिससे फूल, फली अधिक मात्रा में बनते हैं। खेत में पौधों की संख्या कम होने से यह विधि अधिक लाभदायक है।

निरीक्षण एवं अवांछनीय पौधें निकालनाः चने की बीज फसल में तीन बार निरीक्षण करके अवांछनीय पौधों को निकालते रहना चाहिए। बीज एवं खेत के मानकों का विवरण सारणी 3 में दर्शाया गया है।

बटवार अवस्थाः बुवाई के 45–50 दिन बाद पौधों की बढ़वार, फैलाव, बनावट तथा रंग के आधार पर तथा रोग ग्रस्त अवांछनीय पौधों को निकाल देना चाहिए।

फूल आने की अवस्थाः फसल में फूल आने के बाद समय पर फूलों के रंग, पत्तियों के आकार एवं पौधों की बनावट आदि प्रजातिय गुणों के आधार पर निरीक्षण करके अवांछनीय पौधों को निकालना चाहिए।

फसल पकने की अवस्थाः फसल के पकने की अवस्था पर पौधों के रंग, फलियों का रंग व आकार तथा अन्य विशेषताओं को ध्यान में रखकर निरीक्षण करके अवांछनीय पौधों को निकाल देना चाहिए।

खरपतवार नियंत्रणः चने की फसल में खरपतवार की अधिक समस्या होती है। बथुआ, मोथा, पीली सैजी, जंगली सोया, चने का मामा इत्यादि मुख्य खरपतवार हैं जिनके कारण ऊपज में 40–87 प्रतिशत तक कमी हो सकती है इसलिए बुवाई के 50–60 दिनों तक खरपतवार की रोकथाम आवश्यक है। बुवाई के 25–30 दिन बाद निराई करनी चाहिए तथा आवश्यकता होने पर दूसरी निराई बुवाई के 50–60 दिनों के बाद करनी चाहिए। खरपतवार की रोकथाम के लिए बुवाई के तुरन्त बाद स्टाम्प 35 ई.सी. 3 लीटर दवा 600–800 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करना चाहिए। सिचाई के बाद उचित ओट पर गहरी निराई गुडाई करके खरपतवार निकालने चाहिए, ताकि पौधो की जडों में हवा का आवागमन आसानी से हो सके।

प्रमुख बीमारियाः चने में निम्न प्रमुख बीमारियों का अधिक प्रकोप होता है।

उक्ठा रोगः यह रोग *फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम* नामक कवक से फैलता है। इसके आक्रमण से पौधों की शीर्ष उपरी टहनियां तथा पत्तियां झुक जाती हैं तथा धीरे–धीरे पौधा मर जाता है। जड़ के पास तने को बीच से लम्बवत काटकर देखने पर बीच का भाग काला,भूरा दिखाई देता है।

झुलसा रोगः यह *एस्कोचाइटा रेबीआई* नामक फंगस से फैलता है। इसके आक्रमण से संक्रमित पौधे की पत्तियाँ, तनों व शाखाओं पर भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं।

शुष्क मूल विगलनः *राइजोक्टोनिया बटाटिकोला* नामक फफूंद से फैलता है। इसके आक्रमण से संक्रमित पौधे की पत्तियों और तने का रंग भूसे के समान पीला हो जाता है। मुख्य जड़ के पास द्वितीयक जड़ें विगलित तथा सूखी हुई दिखाई देती हैं। वायुमण्डीय तापमान 30 डिग्री सेल्सियस से अधिक होने पर इस रोग का आक्रमण बढ़ जाता है।

काला जड विगलनः यह रोग *फ्यूजेरियम सोलेनाई* नामक फंगस से द्वारा फैलता है। इसके आक्रमण से पौधों का रंग पीला पड़ जाता है तथा ग्रीवा के उपर तनों पर गहरे काले रंग के धब्बे दिखाई पड़ते हैं एवं जड़ें सड़कर काली हो जाती है।

तना विगलनः यह *स्केलेरोटीनिया स्कलेरोसिरम* नामक फफूंद से फैलता है। इसके आक्रमण से पौधे की पत्तियाँ पीली पड़कर झुक जाती हैं। नम वातावरण में पौधों के तनों पर रूई तथा काले रंग की आकृति दिखाई देती है।

स्टन्ट वायरसः यह विषाणु रोग है। इससे ग्रसित पौधें पीले, संतरी, भूरे मलिनीकरण हो जाते हैं और पौधों की वृद्धि रूक जाती है। पौधों में फूल नहीं आते हैं जिसके कारण फलियाँ भी नहीं बनती हैं और पौधे की अकाल मृत्यु हो जाती है।

बीमारी नियत्रणः

- गर्मी में गहरी 2–3 जुताईयॉ करनी चाहिए ताकि हानिकारक जीवाणु नष्ट हो जायें।
- बुवाई अनुमोदित समय पर करें तथा अनुमोदित प्रजाति उगायें।
- बीज को बुवाई से पहले कवकनाशी थाइरम या बाविस्टिन 2.5 ग्राम प्रति किग्रा. बीज की दर से उपचारित करना चाहिए।
- सिंचाई अतिआवश्यक होने पर ही करनी चाहिए।
- सिंचाई एवं उर्वरक का प्रयोग भूमि परीक्षण के अनुसार अथवा संस्तुति के आधार पर करना चाहिए।
- फसल पर फफूंदी जनक रोग प्रक्रट हाने पर नियंत्रण के लिए 2 ग्राम डाइथेन एम 45 या बाविस्टन 1 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से 600–800 लीटर घोल का छिड़काव करना चाहिए।
- खेत में आवश्यकता से अधिक नमी नहीं होनी चाहिए तथा जल निकास की व्यवस्था होनी चाहिए।
- फसल में अधिक प्रकोप होने पर 2 ग्राम डाइथेन एम 45 तथा बवास्टिन 1 ग्राम प्रति लीटर पानी का घोल बनाकर जड़ों में डालना चाहिए।
- समय–समय पर निराई गुड़ाई करते रहें ताकि हवा का आवगमन बना रहे।
- फसल चक्र अपनायें ताकि जीवाणुओं को खेत में पनपने का अवसर न मिले।

कीट नियंत्रण

फली छेदकः यह चने का हानिकारक कीट है इसके लार्वा पौधो के कोमल अंगों को खाते हैं जो बाद में फली बनने के समय उसमें छेद करके बीज को भी खाते हैं।

दीमकः यह जड़ और तने को छेदकर या खुरचकर खाती हैं। जिससे पौधों की मृत्यु हो जाती है।

चने का कटुआ (कट वर्म) : यह भी चने का हानिकारक कीट है जो बीज के अंकुरण के बाद शुरू की अवस्था में आक्रमण करता है। यह कीट पौधे के निचले भाग अर्थात मिट्टी से थोड़ा उपर वाले भाग को काट देते हैं। यह शाम को रात में निकलकर कोमल पौधों, तनों और शाखाओं को आधार पर काटती हैं। जिसके कारण पर्याप्त अंकुरण होने पर भी खेत में पौधों की संख्या काफी कम हो जाती है।

कीट नियत्रणः

- गर्मी में गहरी जुताई करें तथा फसल चक्र जरूर अपनाये।
- फसल की बुवाई अक्टूबर के अन्तिम सप्ताह में करें तथा बीज की निर्धारित मात्रा प्रयोग करें।
- कृषि रसायनो एवं उर्वरक की अनुमोदित मात्रा ही प्रयोग करें।
- 200–250 मिली. ट्रेसर या 450–500 मिली. एवान्ट की मात्रा 600–800 लीटर पानी प्रति हेक्टेयर घोल बनाकर 15 दिन के अंतराल पर 2–3 छिड़काव करने चाहिए।
- फली छेदक के नियत्रंण के लिए फिरोमेन ट्रैप का उपयोग लाभकारी है। यह प्लास्टिक का एक विशेष ढ़ांचा होता है। इस ढ़ॉचे में काले रंग का प्लास्टिक से बना एक विशेष रसायन लगाया जाता है जो नर कीट को आकर्षित करता है। जिससे नर कीट इसमें फंसते जाते हैं। जब 3–4 कीट इस आकृति में फंस जाते हैं तो कीटनाशकों का छिड़काव शुरू कर देना चाहिए।
- कटवर्म के नियंत्रण के लिए क्यूनालफॉस 25 ई.सी. की 1500 मिली. मात्रा को 600–800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।
- दीमक के नियत्रण के लिए पहली फसल के अवशेषों को नष्ट करके ही बुवाई करें।
- दीमक के नियंत्रण के लिए बूवाई से पूर्व अन्तिम जुताई के समय 3–4 लीटर क्लोरोपायरोफॉस 20 ई. सी. को बालु में मिलाकर अथवा 25–30 किग्रा. रीजेन्ट प्रति हेक्टेयर खेत में छिटककर मिट्टी में मिला देना चाहिए
- यदि सिंचाई का समय हो तो 3–4 लीटर प्रति हेक्टेयर क्लोरापाइरेफॉस 20 ई.सी. को सिंचाई जल के साथ बूंद–बूंद डालकर दीमक से बचाव हो जाता है ।

कटाई एवं थ्रेसिंगः परिपक्व अवस्था पर जब पौधे सूख जायें या फलियाँ के अन्दर दाना पूर्ण रूप से पक जाये और पत्तियॉ लाल से भूरे रंग की होकर गिरने लगे तो काटना चाहिए। हरी फसल की कटाई करने से बीज की गुणवत्ता प्रभावित होती है तथा कटाई इस प्रकार करें कि फलियाँ न टूटे। पौधों को काटकर खींचना नहीं चाहिए, इससे फलियाँ झड़ जाती हैं। फसल अधिक बढ़ने की स्थिती में चारों तरफ गोलाई में काटकर बीच में ढ़ेर लगा देना चाहिए। पौधों को खींच कर कटाई करने से फली टूटने से अधिक हानि होती है कटाई सुबह तथा शाम को ही करें, दोपहर में कटाई करने पर पौधों से फलियाँ झड़कर हानि होती हैं। काटने के बाद 4–5 दिन धूप में सुखाकर ट्रैक्टर चलाकर या थ्रेसर द्वारा बीज को अलग कर लेना चाहिए। थ्रेसर द्वारा थ्रेसिंग करने पर दाने टूटने से हानि अधिक होती है तथा बीज के अंकुरण पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है। थ्रेसर से थ्रेसिंग करने से थ्रेसर की स्पीड कम रखना चाहिए ताकि दाने टूटने न पायें। जहाँ तक संभव हो काबुली प्रजाति को ट्रैक्टर चलाकर थ्रेसिंग करें अन्यथा मशीन का प्रयोग करने पर दाने अधिक टूटते हैं। कटाई एवं मड़ाई करते समय बीज में मिश्रण न हो, इस बात का ध्यान रखें। इसके लिए थ्रेसिंग मशीन तथा थ्रेसिंग फ्लोर की सफाई कर लेनी चाहिए।

ग्रेडिंग एवं पैकिंगः ग्रेड़िग से पहले बीज को सूखाकर ग्रेडिंग करना चाहिए। बीज के आकार के अनुसार सामान्यतः ग्रेडिंग मशीन में नीचे की जाली का आकार 5.5–7 मि.मी. तथा ऊपर की जाली का आकार 7–9 मि.मी. रखना चाहिए। ग्रेडिंग करने से पूर्व ग्रेडिंग मशीन की तथा फर्श की अच्छी प्रकार से सफाई कर लेनी चाहिए।

भण्डारणः ग्रेडिंग के बाद बीज भरने के लिए नई बोरीयों का प्रयोग करना चाहिए तथा बोरियों में अन्दर तथा बाहर प्रजाति के नाम का लेबल अवश्य लगाऐं। ग्रेडिंग के बाद बीज की सुरक्षा हेतु भण्डार गृह में डेल्टामेथ्रिन या न्यूवान 5 मि.ली. प्रति ली. दर से घोल बनाकर छिड़काव करें। बीज को दीवार से सामान्यतः एक फुट हटाकर तथा जमीन से 6–8 इंच उपर लकड़ी या प्लास्टिक के रैक पर रखें। भण्डार गृह में बीज में 9–10 प्रतिशत से अधिक नमी न हों। जून के अन्तिम सप्ताह में फ्यूमीगेशन करने के लिए बीज को पॉलीथीन से ढ़ककर सेल्फॉस की 2–3 गोलियां प्रति टन के हिसाब से रखनी चाहिए। इस बात का ध्यान रखें

कि फ्यूमीगेशन के लगभग 15 दिन बाद तक कमरे को न खोलें ताकि गैस बाहर न निकलें। जुलाई तथा अगस्त में हर 15–20 दिन के अन्तर पर डेल्टामेथ्रिन या न्यूवान का छिड़काव भण्डार गृह में करने से बीज पूर्ण रूप से सुरक्षित रहता है। बिक्री से पूर्व बीज को 2–5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से थीरम से उपचारित करके, बीज के टेग पर सभी सुचनाएं लिखकर बिक्री करना चाहिए।

सारणी–3 खेत एवं बीज के मानक

बीज मानक	बीज मानको का स्तर	
	आधार बीज	प्रमाणित बीज
खेत के मानक		
पृथक्करण दूरी	10 मीटर	5 मीटर
अन्य प्रजाति के पौधें	0.10 प्रतिशत	0.20 प्रतिशत
फसल निरीक्षण की संख्या	3	3
बीज के मानक		
बीज ढेर का आकार (अधिकतम)	200 कुंतल	200 कुंतल
परीक्षण हेतु नमूने का आकार	1 किग्रा.	1 किग्रा.
शुद्ध बीज (न्यूनतम)	98.0 प्रतिशत	98.0 प्रतिशत
अक्रिय तत्व (अधिकतम)	2.0 प्रतिशत	2.0 प्रतिशत
अन्य फसलों के बीज (अधिकतम)	नही	5 प्रति किग्रा0
खरपतवारों के बीज (अधिकतम)	नही	नही
अन्य पहचानने योग्य प्रजातियों के बीज (अधिकतम)	5 प्रति किग्रा0	10 प्रति किग्रा0
अंकुरण कठोर बीज सहित (न्यूनतम)	85 प्रतिशत	85 प्रतिशत
बीज में नमी (अधिकतम)	9.0 प्रतिशत	9.0 प्रतिशत
वायुरोधी पैकिंग में (अधिकतम)	8.0 प्रतिशत	8.0 प्रतिशत

शीतकालीन सब्जियों की खेती

बी. एस. तोमर, जोगेंद्र सिंह एवं गोगराज सिंह जाट
शाकीय विज्ञान संभाग
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

भारत 1.31 अरब की अनुमानित जनसंख्या के साथ दुनिया में चीन के बाद दूसरा सबसे बड़ा आबादी वाला देश है। यह अनुमान है कि 1.2 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि के साथ भारत 2050 तक दुनिया में 1.7 अरब की जनसंख्या के साथ उच्चतम आबादी वाला देश होगा। भारत एक कृषि प्रधान देश है जिसका कुल शुद्ध बुवाई क्षेत्र 141. 4 मिलियन हेक्टेयर हैं तथा प्रति व्यक्ति भूमि संसाधन 0.12 हेक्टेयर है जो भविष्य में विकासात्मक गतिविधियों के जबरदस्त दबाव के कारण और सीमित होते जा रहे है। इसलिए ऐसी परिस्थितियों में कम से कम समय के भीतर प्रति इकाई क्षेत्र में अधिकतम उत्पादन सुनिश्चित करना बहुत महत्वपूर्ण है। सब्जी फसलें अन्य फसलों की तुलना में उत्पादकता में अधिक होती हैं जो कि प्रति इकाई समय और जमीन के क्षेत्र में अधिक भोजन प्रदान करने में सक्षम होती हैं। अंतर्राष्ट्रीय खाद्य नीति अनुसंधान संस्थान (आईएफपीआरआई), वाशिंगटन 2016 की रिपोर्ट के अनुसार 15.2 प्रतिशत भारतीय नागरिक कुपोषित हैं तथा पर्याप्त मात्रा में भोजन (मात्रा और गुणवत्ता) से वंचित हैं। अनाज आधारित आहार भारतीय खाद्य आदत की विशेषता है और हमारे आहार में बड़ी कमी कैलोरी, प्रोटीन, विटामिन ए और राइबोफ्लेविन की है। भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली और राष्ट्रीय पोषण संस्थान, हैदराबाद के अध्ययन के अनुसार हमारे देश में सब्जियों का पर्याप्त मात्रा में सेवन ना करना कुपोषण के लिए जिम्मेदार माना गया है। आहार विशेषज्ञों के अनुसार संतुलित आहार में कम से कम 300 ग्राम सब्जी, जिसमे 125 ग्रा. पतियों वाली, 75 ग्रा. अन्य दूसरी सब्जियाँ तथा 100 ग्रा. जड़ो वाली सब्जियाँ प्रत्येक दिन प्रति व्यक्ति को लेनी चाहिए। आहार में विभिन्न प्रकार के पोषक मूल तत्वों की जरूरतों को पूरा करने के लिए सब्जियाँ सबसे अच्छा विकल्प है क्योंकि सब्जियाँ विटामिन, खनिज और ओषधि गुणों से भरपूर होने के साथ रेशे का भी विकल्प होती हैं। सब्जियां सभी पोषक घटक प्रदान करती हैं, जैसे कि कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, विटामिन, खनिज और पानी जो उचित आहार के लिए जरूरी होते हैं। सब्जियों में प्रचुर मात्रा में विटामिन और खनिज होने की वजह से इन्हें सुरक्षात्मक खाद्य पदार्थ भी कहा जाता हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी कम करने और स्थायी खाद्य और पोषण प्रदान करने के लिए सब्जियां सबसे उपयुक्त विकल्प हैं।

भारत का सब्जी उत्पादन में चीन के बाद दूसरा स्थान है। राष्ट्रीय बागवानी मंडल, गुरुग्राम (2017–18) के अनुसार भारत में सब्जी फसले लगभग 10.2 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र खेती की गई जिससे कुल उत्पादन 184.4 मी. टन हुआ है तथा सब्जियों की उत्पादकता 17.97 मिलियन टन प्रति हेक्टेयर है। भारत में रबी मौसम में उगाई जाने वाली महत्वपूर्ण एवं प्रमुख सब्जियां, गोभी वर्गीय (पत्तागोभी, फूलगोभी एवं ब्रोकोली) जड़ वाली फसले (मूली, गाजर, चुकंदर एवं शलजम) फलीदार सब्जियां (मटर एवं राजमा), कंद सब्जियां (प्याज एवं लहसुन), पत्तेदार सब्जियां (पालक, विलायती पालक, मेथी, साग सरसों, बथुआ एवं सलाद) आदि शामिल है। इन सब्जियों का स्वस्थ जीवन में महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। इन सब्जियों में कई पोषक तत्वों जैसे कार्बोहाइड्रेट (प्याज और लहसुन), प्रोटीन (मटर, राजमा और लहसुन), विटामिन–ए (गाजर), विटामिन–बी (मटर और लहसुन), विटामिन–सी (मिर्च, शिमला मिर्च) रेशायुक्त और फोलिक एसिड और बहुत से खनिज पदार्थ पर्याप्त मात्रा में होते हैं जिनका मानव आहार में एक महत्वपूर्ण योगदान है। गोभी वर्गीय फसले कैंसर, आघात और हृदय रोगों के जोखिम को कम करने के साथ–साथ रक्तचाप को सामान्य बनाए रखने और रक्त कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करने में भी सहायक होती है। प्याज एवं लहसुन में पाये जाने वाले रासायनिक पदार्थ कुरसिटिन, एल्लाइल प्रोपायल सल्फाइड एवं डाइअलाइल डाई–सल्फाइड आदि जीवाणु–रोधी, फफूंद–रोधी एवं वायरस रोधी होते है।

उन्नत बीज कहाँ से खरीदे?

किसी भी फसल की अच्छी पैदावार सुनिचित करने के लिए उपुक्त किस्म का चयन तथा अच्छी गुणवता वाले बीज की बुआई करना होता हैं। शीतकालीन सब्जियों का बीज किसान भाई भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, नई दिल्ली के कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक) एवं बीज उत्पादन इकाई तथा क्षेत्रीय अनुसंधान केंद्र, करनाल (हरियाणा) एवं कटराई (हिमाचल प्रदेश), भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी, भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु, राष्ट्रीय बीज निगम, नई दिल्ली, राज्यो के राज्य बीज निगम तथा नजदीकी कृषि विश्वविद्याालयो आदि से प्राप्त कर सकते है।

उन्नत किस्में:

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अंतर्गत कार्यरत कृषि अनुसंधान संस्थानों तथा राज्य कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा सब्जी फसलों की अधिक उपज देने वाली किस्मों का विकास किया गया है। शीतकालीन सब्जी फसलों की अधिक उपज देने वाली किस्मों तथा उनका बुआई का समय का विवरण तालिका –1 में दिया गया है।

उन्नत किस्में खेत की तैयारी कैसे एवं कब करे?

वैसे तो शीतकालीन सब्जी फसलों को विभिन्न प्रकार की भूमि में उगाया जा सकता हे परंतु इनकी सफल खेती के लिए भूमि अच्छी तरह से सूखी हुई तथा उच्च कार्बनिक पदार्थ युक्त एवं उपजाऊ होनी चाहिए। उच्च कार्बनिक पदार्थ युक्त खेत उत्पादन के साथ–साथ उत्पाद की गुणवत्ता बढ़ाने में भी सहायक रहता है। अच्छी प्रकार से सड़ी हुई 30–35 टन गोबर की खाद खेत की तैयारी से 25–30 दिन पहले खेत में डालनी चाहिए। किसान भाई इस बात का हमेशा ध्यान रखे की खेत में कभी भी कच्ची खाद का उपयोग न करे क्योंकि कच्ची खाद दीमक को आंमत्रित करती है एवं फसल को नुकसान पहुंचाती हैं। मृदा में किसी भी पोषक तत्व की कमी को जानने के लिए मिट्टी परीक्षण किसी भी नजदीकी कृषि विज्ञान केंद्र से कराये तथा जाँच के अनुसार पोषक तत्वों का इस्तेमाल करे। भूमि में 3–4 बार जुताई करने के पश्चात् पाटा चलाकर भूमि को भूरभूरी व समतल कर लेना चाहिए। पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से की जानी चाहिए। गोभी वर्गीय, फलीदार एवं पत्तेदार सब्जियों के लिए रेतीली दोमट मृदा जिसका पी.एच. मान 6.0–7.0 हो उपयुक्त रहती है। रेतीली दोमट मृदा जिसका पी.एच. मान 6.0–7.5 हो, जड़ वाली फसलो (मूली, गाजर, चुकंदर एवं शलजम) के लिए उपयुक्त रहती है। भारी मिट्टी जड़ वाली फसलो के लिए उपयुक्त नहीं होती हे क्योंकि इस प्रकार की मिटटी में जड़ो का विकास अवरुद्ध हो जाता है तथा जड़ो से शाखाएं भी निकल आती है। कंद वाली सब्जियों के भारी मिट्टी में कंद विकृत हो जाते है तथा खुदाई के समय कंद कट फट भी सकते है।

फसल चक्र:

रबी मौसम की सब्जियों में फसल चक्र मुख्यतः कीटो एवं बीमारियों को कम करने, पोषक तत्वों का समेकित प्रबंधन करने, पोषक तत्वों की मात्रा खेत में बढ़ाने आदि उदेश्यो के लिए किया जाता है क्योंकि अलग–अलग कुल की सब्जियों की पोषक तत्वों की आवश्यकता अलग अलग होती है।

दो फसल चक्र के उदाहरण: फूल गोभी (नवम्बर–जनवरी) – प्याज (जनवरी–मई), पत्ता गोभी (नवम्बर–फरवरी) – मूली (मार्च–अप्रैल), मूली (सितम्बर– अक्टूबर) – नवम्बर–फरवरी(फूल गोभी), मूली (सितम्बर– अक्टूबर) – मटर (नवम्बर– फरवरी), मूली (सितम्बर– अक्टूबर) – नवम्बर– दिसम्बर (राजमा)।

तीन फसल चक्र के उदाहरण: मूली (सितम्बर– अक्टूबर) – फूल गोभी (नवम्बर–जनवरी) – प्याज (जनवरी–मई)

चार फसल चक्र के उदाहरण: हरी प्याज (सितम्बर–नवम्बर) – बथुआ (नवम्बर–जनवरी) – पालक (जनवरी–मार्च) – मूली (मार्च–अप्रैल)

शीतकालीन सब्जियों की पौधशाला तैयार कैसे करे:

शीतकालीन सब्जियों की पौध तैयार करने के लिए निम्न पहलुओं पर विशेष ध्यान दे।

1. पौधशाला ऐसे स्थान पर तैयार करनी चाहिए जहाँ पानी के उचित जल निकास की व्यवस्था हो।
2. उक्त स्थान पर प्रकाश की अच्छी उपलब्धता होनी चाहिए।

3. पौधशाला पानी के स्त्रोत के नजदीक होनी चाहिए जिससे आसानी से पानी दिया जा सके।
4. पौधशाला ऐसे स्थान पर बनानी चाहिए जहाँ जंगली जानवरो का प्रवेश न हो।
5. लगातार एक ही स्थान पर पौधशाला ना बनाये अन्यथा आर्दगलन का प्रकोप अधिक होता हैं

शीतकालीन सब्जी फसलों (गोभी वर्गीय फसलों, प्याज एवं सलाद) की पौध तैयार करने के लिए पौधशाला में बीज की बुआई मध्य सितम्बर–अक्टूबर के दौरान कर सकते है। पौधशाला की भूमि को रोगाणुरहित करने के लिए फॉरमेल्डिहाइड 20 मि.ली. से 1 लीटर पानी में घोल बनाकर चुने गए स्थान पर अच्छी तरह छिड़काव कर सफेद रंग की पॉलीथीन से ढक दें। लगभग एक सप्ताह पश्चात् पॉलीथीन हटाकर अच्छी तरह खुदाई कर के खुला छोड़ दें जिससे रसायन का असर समाप्त हो जाए। इसके पश्चात भूमि को अच्छी तरह भूरभूरी बनाएं तथा उपचार के 10–15 दिन बाद बुआई के लिए तैयार करें। यह उपचार आर्द्रपतन की रोकथाम में सहायक होता हैं। बीज उपचार फफूंदनाशक दवा (थीरम या कैप्टान) 2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम के हिसाब से करे। पौधशाला में पौध उठी हुई क्यारियों पर तैयार करना चाहिए। इन क्यारियों की लंबाई कम से कम 3 मीटर व चौड़ाई 0.6 मीटर रखनी चाहिए। बीजो की बुआई पंक्तियों में करे तथा बुआई की गहराई 1.5–2.0 से. मी. रखे। बीजों को बोने के बाद गोबर की खाद (ट्राईकोडरमा युक्त) व मिट्टी के मिश्रण से ढक कर हजारे की सहायता से हल्की सिंचाई करनी चाहिये। यदि संभव हो तो क्यारियों को पुवाल या सूखी घांस से जमाव आने तक ढक देना चाहिये जिससे क्यारियों में नमी बनी रहती हे तथा बीजो का एक समान जमाव होता है। गोभी वर्गीय फसलो में पौध 28–30 दिन तथा प्याज एवं सलाद में 35–38 दिन में रोपाई के लिए तैयार हो जाती है।

बीजोपचार करके करे बुआईः

शीतकालीन सब्जी फसलों की बुवाई से पूर्व बीजोपचार, थीरम (2ग्रा), बाविस्टिन (1ग्रा.) प्रति कि. ग्रा. बीज दर के हिसाब से करने पर उक्टा रोग अथवा अन्य कवक रोगों से बचाव होता हैं। मटर, फ्रेंचबीन, मैथी आदि में बुवाई से पहले राइजोबियम कल्चर (200ग्रा. प्रति एकड़) से उपचारित करना लाभदायक है। इससे पौधों की जड़ो में अधिक जीवाणु ग्रंथिकाएँ बनती है जो अधिक मात्रा में वायुमंडलीय नाइट्रोजन का मिट्टी में स्थायीकरण करती है जिससे फसल की उपज बढ़ने के साथ साथ गुणवत्ता में भी वृद्धि होती है व खेत में नाइट्रोजन की मात्रा भी बढ़ जाती है जो अगल मौसम में लगाई जाने वाली फसल के लिए भी लाभप्रद होता है एवं उसमें नाइट्रोजन की मात्रा भी कम डालनी पड़ती है।

बुआई की विधिः

जड़ वाली फसलो की बुआई मेढ़ों पर करनी चाहिए जिससे उनकी जड़ो का विकाश अच्छा होता है व इनमे जड़ विकास अवरुद्ध की समस्या भी नहीं होती है। कंद वाली सब्जियों के कंदो का विकास भी अच्छा होता है व कंद कटते–फटते नहीं है। फलीदार एवं पत्तेदार सब्जियां की बुआई समतल या उठी हुई क्यारियों में छिटकवा विधि से अथवा हल के पीछे कतारो में की जाती है।

खाद व उर्वरकः

खाद व उर्वरकों का प्रयोग करने से पहले निकटतम कृषि विज्ञानं केंद्र या जिला कृषि विभाग की मृदा प्रयोगशाला से मिट्टी की जांच करवा लेनी चाहिए। मिट्टी की जांच के अनुसार उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए। कच्ची गोबर की खाद का प्रयोग ना करे ये दीमक को आमंत्रित करती है। खाद व उर्वरक का प्रयोग सारणी–1 में दी गयी मात्रा के अनुसार करना चाहिए।

सिचाई कैसे एवं कब करे?

मृदा मे नमी कम होने पर सिंचाई करनी चाहिये। यदि खेत मे ज्यादा पानी का भराव हो गया हो तो तुरंत जल निकास की व्यवस्था करनी चाहिये। सामान्यतः शीत ऋतु वाली सब्जियों में 10–12 दिनो के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिये। बूंद–बूंद सिंचाई विधि भी इन फसलो में इस्तेमाल में लाई जा सकती है जिससे पानी की बचत 30–40% तक होती है व पानी में घुलनशील उर्वरक (एन. पी. के. 19:19:19) भी सिचाई के साथ दिये जा सकते है।

खरपतवार नियंत्रणः

रबी मौसम की फसलो की अच्छी बढ़वार के लिए

प्रारम्भिक अवस्था में खरपतवार नियंत्रण अत्यधिक आवश्यक है क्योंकि फसल की अच्छी बढ़वार की अवस्था में खरपतवार कम हो जाते है। खरपतवार इन फसलों से पानी, प्रकाश एवं पोषक तत्वों के लिए प्रतियोगिता करते है तथा कीट व बिमारियों को शरण देते हैं जिससे फसलों की उपज को 20–80 प्रतिशत तक कम कर देते है। ये खरपतवार फसलो में सुरवाती 4–6 सप्ताह तक अधिक नुकसान करते है। पहली दो सिंचाई के बाद में हल्की निराई गुडाई करनी चाहिए। रासायनिक खरपतवार नियन्त्रण के लिए पेन्डीमिथेलीन (30 ई.सी.) 400 मि.ली. की मात्रा प्रति एकड को 200 ली. पानी में रोपाई से पहले छिड़काव करें। खड़ी फसल में खरपतवारनाशी क्विजलोफोप का प्रयोग खेत में करना चाहिए।

जाल फसल का प्रयोग करके कीटों से बचायेः

वह फसले जो मुख्य फसल में लगने वाले प्रमुख कीटो को अपनी ओर आकर्षित करती है जिससे मुख्य फसल को इन हानिकारक कीटो के प्रकोप से बिना कीटनाशको का प्रयोग किये बचाया जा सके जाल फसले कहलाती है। ये जाल फसले मुख्य फसल की परिधि या उनके मध्य में लगाई जा सकती है। जाल फसले उसी समय लगानी चाहिए जब मुख्य फसल में कीटो का प्रकोप अधिक हो जिससे ये कीट जाल फसलो की और आकर्षित हो और उनका जीवन चक्र इन फसलो पर पूरा हो उससे पहले इनको नष्ट किया जा सके।

1. जब पत्ता गोभी के खेत के चारो तरफ कोलार्ड की फसल लगाई जाती है तो पत्ता गोभी में लगने वाले डायमंड बैक मोथ का प्रकोप कम हो जाता है।
2. जब पत्ता गोभी के खेत के चारो तरफ चाइनीज पत्ता गोभी की फसल लगाई जाती है तो पत्ता गोभी में लगने वाले माहू का प्रकोप कम हो जाता है।
3. पत्तागोभी के खेत में सरसों की एक कतार खेत के चारो तरफ लगाने से हेड कैटरपिलर तथा माहू का प्रकोप कम होता है।
4. जब गाजर के खेत के चारो तरफ प्याज एवं लहसुन की फसल लगाई जाती है तो गाजर में लगने वाले गाजर जड़ मक्खी का प्रकोप कम हो जाता है।
5. जब पत्तागोभी के खेत के चारो तरफ टमाटर की फसल दो सप्ताह पहले लगाई जाती है तो पत्ता गोभी में लगने वाले डायमंड बैक मोथ का प्रकोप कम हो जाता है।
6. जब पत्तागोभी के खेत के चारो तरफ मूली की फसल दो सप्ताह पहले लगाई जाती है तो पत्ता गोभी में लगने वाले जड़ मैगट तथा फलिया बीटल का प्रकोप कम हो जाता है।

शीतकालीन सब्जियों का पाले से बचाव कैसे करेः

दिसम्बर–जनवरी की माह के जब कड़ाके की ठण्ड पड़ती है तब मुख्यतः फलीदार सब्जियों में पाले से फसल को बचने की लिए निम्न क्रियाये अपनाई जा सकती है।

1. जब भी पाले की सम्भावना हो हल्की सिंचाई कर दे।
2. पोटेशियम सल्फेट (2–3 प्रतिशत) एवं सल्फर वाले उर्वरको की मात्रा भी अधिक देने पर इन फसलो को पाले से बचाया जा सकता है।
3. इन फसलो की कतारो को पारदर्शी पॉलिथीन से भी ढक्का जा सकता है जिससे नुकसान कम हो जाता है।
4. पलवार भी इनको पाले से बचाने में उपयुक्त साबित होती है।
5. खेत के किनारों पर उत्तर दिशा में अधिक वृद्धि वाली फसलो जैसे मक्का, सरसों एवं तिल लगाया जा सकता है जिससे इस दिशा में चलने वाली ठंडी बर्फीली हवाओ से फसल को बचाया जा सकता है एवं दूसरी फसलो से भी उत्पादन प्राप्त हो जाता है।

छटनी करके भेजे बाजारः

जब सब्जियों को उनके आकार, आकृति, रंग, वजन, आयतन, रोगों से मुक्ति एवं विशिष्ट गुरुत्व के आधार पर विभाजित किया जाता है जिसका मुख्य उद्देश्य बाजार मूल्य अधिक लेना हो, छटनी कहलाता है।

1. घटिया उत्पादों या नमूना की मौजूदगी की वजह से घाटा या कम बिक्री मूल्य से आसानी से छटनी करके बचा जा सकता है।
2. वर्गीकृत उत्पादों के लिए अच्छा मूल्य निर्धारित करने के लिए।

3. पैकिंग और परिवहन में भारी विपणन लागत से बचा जा सकता है।
4. रोगग्रस्त नमूने स्वस्थ नमूनों को रोगग्रस्त नहीं कर सकते है
5. छटनी की हुई सब्जियों को उपभोक्ता बिना देखे परखे आसानी से खरीद लेता है।

विशेष क्रियाये एवं ध्यान रखने योग्य बातेः

1. जड़ वाली फसलो में समय–समय पर जड़ो को मिटी से ढकते रहना चाहिए अन्यथा जड़ वायुमंडल व सूर्य की रोशनी के संपर्क में आकर हरे रंग की हो जाती है जिससे उनका बाजार मूल्य कम हो जाता है एवं जड़ो की गुणवत्ता पर भी असर पड़ता है।
2. कंद वाली सब्जियों में पानी मेड़ो के ऊपर तक नहीं देना चाहिए, जब मेढे आधी पानी में डूब जाये तब सिंचाई बंद कर देनी चाहिए।
3. गाजर के खेत में बुआई से पहले ट्राइकोडर्मा डालना चाहिए जिससे जड़ो में होने वाले गुहा–धब्बे से निजात मिल जाती है।
4. अधिक खारे पानी का प्रयोग विशेषतः ड्रिप–सिंचाई के लिए नहीं करना चाहिए।
5. अगर सिंचाई का पानी अधिक खारा हो तो इसको सहन करने वाली फसलें जैसे पालक, विलायती पालक, साग सरसों, शलजम, मूली तथा चुकंदर की खेती करना अधिक लाभप्रद रहता है।
6. पालक की पत्तियो की कटाई 15–20 दिन के अन्तराल पर करते रहना चाहिए। पालक की लगभग 6–8 कटाई की जा सकती है।

शीतकालीन सब्जी फसलों की जैविक खेतीः

भारी आबादी के लिए उच्च सब्जी उत्पादन की कभी न खत्म होने वाली मांग ने कृषि में रसायनों (उर्वरकों और कीटनाशकों) के अत्यधिक उपयोग की मांग को बढावा दिया है। पिछले तीन दशकों में भारत में उर्वरकों की खपत औसतन प्रति वर्ष आधा मिलियन टन हो गई है। रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग ने जलीय जीवन, पौधों और जानवरों पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है। रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग करने वाले क्षेत्रों में भूजल एवं सिंचाई के पानी में अधिक नाइट्रेट स्तरों से दूषित पाये गये हैं। अतः अत्यधिक रासायनिक उर्वरक और कीटनाशकों के निरंतर उपयोग से मिट्टी, पर्यावरण और संसाधनों का क्षरण होता है। इसलिए, उर्वरक और कीटनाशकों के रूप में रसायनों के कम उपयोग के साथ सीमित संसाधनों से अधिक सब्जियों का उत्पादन करने के लिए एक स्थायी रणनीति के साथ प्राकृतिक संतुलन बनाए रखने की आवश्यकता है जिससे मिट्टी और पर्यावरण को दूषित होने से बचाया जा सके। जैविक सब्जी की खेती न केवल दीर्घकालिक मृदा स्वास्थ्य के लिए आवर्ती लाभ के साथ सबसे स्थायी कृषि प्रणालियों में से एक है, बल्कि विभिन्न जैविक और अजैविक तनावों के खिलाफ फसल के बेहतर प्रतिरोध को इस्तेमाल करके उत्पादन में एक स्थायी स्थिरता प्रदान करती है।

सब्जियों की जैविक खेती क्यों करे?

1. मुख्यतः सब्जियां ताजा खाई जाती हैं, इसलिए, किसी भी प्रदूषण (रासायनिक अवशेष) से विभिन्न प्रकार के स्वास्थ्य खतरे हो सकते हैं।
2. रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के बढ़ते उपयोग के कारण भूमि उत्पादकता में कमी।
3. सब्जी उगाने वाले बड़े पैमाने पर गरीब, छोटे और सीमांत किसान है तथा उर्वरकों, कीटनाशकों आदि के उपयोग से उत्पादन की बढ़ती लागत।
4. रसायनों और भारी धातुओं से मुक्त सब्जियों की आपूर्ति।
5. रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग से पर्यावरण की गुणवत्ता, पारिस्थितिक स्थिरता और उत्पादन की स्थिरता के लिए खतरा पैदा हो गया है।
6. उचित रूप से प्रबंधित जैविक कृषि प्रणाली फसल उत्पादकता को बढ़ा सकती है और प्राकृतिक आधार को बहाल कर सकती है।

शीतकालीन सब्जियों का आवश्यक तापमान, बीज दर (हेक्टेयर), पौध लगाने का समय, फसल अन्तरण, खाद एवं उर्वरको की निर्धारित मात्रा, कटाई का सही समय आदि का तालिका–1 में दिए गये दिशा निर्देशों के अनुसार करे।

तालिका–1 शीतकालीन सब्जियों की उन्नत किस्में, संकर किस्मे एवं उनका बुवाई का समय

फसल	किस्मों के प्रकार	उन्नत किस्में	संकर किस्में	बुआई का समय
पत्तागोभी	अगेती	गोल्डन एकड़, प्राइड ऑफ इंडिया, पूसा अगेती,	पूसा कैबेज संकर–1	अगस्त–सितम्बर
	पछेती	ड्रमहेड सेवॉय, पूसा ड्रमहेड, पूसा मुक्ता		सितम्बर–अक्टूबर
फूलगोभी	अगेती	पूसा मेघना पूसा आश्वनी, पूसा कार्तकी, अर्ली कुंवारी, काशी कुंवारी, अर्का कांति पंतगोभी–3	पूसा कार्तिक संकर	मई–जून
	मध्य–अगेती	पूसा शरद, पंत गोभी–4, पंजाब जायंट–26, इम्प्रूव्ड जापानीज	पूसा हाइब्रिड–2	जुलाई–अगस्त
	मध्य–पछेती	पूसा शुभ्रा, पूसा सिंथेटिक, पूसा हिमज्योति, पूसा पोषजा, पूसा शुक्ति, पंत शुभ्रा, काशी अफगानी		सितम्बर
	पछेती	पूसा स्नोबॉल–1, पूसा स्नोबॉल के–1, पूसा स्नोबॉल के.टी.–25	पूसा स्नोबॉल हाइब्रिड–1	अक्टूबर
ब्रोकोली		पूसा के.टी.एस–1, पालम समृद्धि, पालम विचित्रा, पालम कंचन, पालम हरीतिका, जम्मू ब्रोकोली–6		सितम्बर–अक्टूबर
मूली	यूरोपियन	पूसा हिमानी, व्हाइट आईसकल, रैपिड रेड व्हाइट टिप्पड़, स्कारलेट ग्लोब		अक्टूबर– जनवरी
	एशियाटिक	जापानीज व्हाइट, पूसा देशी पूसा चेतकी, पूसा रेशमी, पूसा श्वेता, पूसा मृदुला, काशी श्वेता, अर्का निशांत		अगस्त–अक्टूबर
गाजर	यूरोपियन	पूसा यमदाग्नी, नैनटेस	पूसा वसुदा	अक्टूबर– जनवरी
	एशियाटिक	पूसा केसर, पूसा मेघाली, पूसा वृष्टि, पूसा आशिता, पूसा रुधिरा	पूसा नयनज्योति	अक्टूबर– जनवरी
चुकंदर		क्रिमसन ग्लोब, डेट्रॉइट डाक्र रेड		सितम्बर–अक्टूबर
शलजम	यूरोपियन	पूसा स्वर्णिमा, पूसा चंद्रिमा, स्नोबॉल, पर्पल टॉप व्हाइट ग्लोब		अक्टूबर––नवम्बर
	एशियाटिक	पूसा कंचन, पूसा स्वेति, पंजाब सफेद–4		जुलाई– अक्टूबर
प्याज		पूसा रिद्धि, पूसा शोभा, पूसा सोना पूसा माधवी, पूसा रेड, पूसा व्हाइट फ्लैट, पूसा व्हाइट राउंड, अर्का विश्वास, अर्का उज्जल, अर्का स्वादिष्ठा, अर्का पीताम्बर, एग्रीफाउंड डाक्र रेड लाल, भीमा रेड, भीमा लाइट रेड, भीमा किरण, भीमा श्वेता	अर्का कीर्तिमान, अर्का लालिमा	अक्टूबर – मार्च
लहसुन		एग्रीफाउंड सफेद, एग्रीफाउंड पार्वती, यमुना सफेद–1, पंत लोहित, भीम ओंकार, भीम बैंगनी		अक्टूबर – मार्च
मटर	अगेती	पूसा श्री, पूसा प्रगति, काशी नंदिनी, काशी मुक्ति, अर्केल, हिसार हरित, पन्त सब्जी मटर–3		अक्टूबर––नवम्बर
	पछेती	बोन्नेविल्ले, लिंकन, पन्त उपहार, पूसा प्रबल		नवम्बर–जनवरी
	फली सहित	पंजाब मिट्ठी फली, जे.पी.–19, यू. एन.–53		
राजमा		पूसा पार्वती, काशी परम, अर्का अनूप, अर्का कोमल, अर्का सुविधा		अक्टूबर––नवम्बर
पालक		पूसा भारती, पूसा ज्योति, ऑल ग्रीन, पूसा हरित, पंजाब ग्रीन, जोबनेर ग्रीन, पंजाब चयन, पंत कम्पोजिट		अक्टूबर––नवम्बर
मैथी		पूसा अर्ली बंचिंग, मेथी सं.47, पूसा कसूरी		अक्टूबर––नवम्बर
सलाद		आइसबर्ग, ग्रेटलेक्स, चाइनीस येलो		अक्टूबर––नवम्बर

तालिका–2 शीतकालीन सब्जियों में की जाने वली महत्वपूर्ण कृषि क्रियाये

फसल	आवश्यक तापमान	आवश्यक मृदा	बीज दर (प्रति हेक्टेयर)	पौधे लगाने का समय	बुआई का समय	फसल अंतरण	उर्वरकों की निर्धारित मात्रा	कटाई
पत्तागोभी	10–20° से.	रेतीली दोमट पी.एच.– 5.5–6.0	अगेती–500 ग्रा पछेती–350 ग्रा	सितम्बर– अक्टूबर	पौध तैयार करने के 25 दिन बाद	अगेती– पंक्ति से पंक्ति–45 से.मी. पौधे से पौधे – 30 से.मी. पछेती– पंक्ति से पंक्ति – 60 से.मी. पौधे से पौधे – 45 से. मी.	15–20 टन सड़ी हुई गोबर की खाद, 150 कि.ग्रा. – नाइट्रोजन 50 कि.ग्रा. – फॉस्फोरस 50 की.ग्रा पोटास,	जब हेड सामान्य आकार का हो जाये
फूलगोभी	10–25° से.	रेतीली दोमट पी.एच.– 6.0–7.0	अगेती– 600–750 ग्रा. पछेती– 400–450 ग्रा.	मुख्य फसल– जुलाई–अगस्त पछेती फसल– सितम्बर– अक्टूबर	पौध तैयार करने के 4 सप्ताह बाद	पंक्ति से पंक्ति –45 से. मी. पौधे से पौधे – 60 से. मी.	15–20 टन सड़ी हुई गोबर की खाद 100 कि.ग्रा.–नाइट्रोजन 50 कि.ग्रा.–फॉस्फोरस 50 कि.ग्रा. पोटास,	जब कर्ड सामान्य आकार का हो जाये
ब्रोकोली	18–23° से.	रेतीली दोमट पी.एच. 6.0– 6.5	400–500 ग्रा.	सितम्बर– अक्टूबर	पौध तैयार करने के 28–30 दिन बाद	पंक्ति से पंक्ति 45 से.मी. पौधें से पौधें 30 से.मी	100 कि.ग्रा.–नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. – फॉस्फोरस 50 कि.ग्रा. पोटास,	जब हेड सामान्य आकार का हो जाये
मूली	यूरोपियन– 10–15° से. एशियाटिक– 15–20° से.	रेतीली दोमट पी.एच. 6.0– 7.5	10–12 कि.ग्रा.	सीधी खेत में बुआई	सितम्बर– जनवरी	पंक्ति से पंक्ति – 60 से. मी. पौधे से पौधे – 8 से. मी.	25–30 टन सड़ी हुई गोबर की खाद 50 कि.ग्रा.–नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा.– फॉस्फोरस 50 कि.ग्रा. पोटास	बुआई के तीसरे सप्ताह बाद
गाजर	15–20° से.	दोमट रेतीली पी.एच. 6.0– 7.5	7–9 कि.ग्रा.	सीधी खेत में बुआई	अगस्त– नवम्बर	पंक्ति से पंक्ति 40 से. मी. पौधे से पौधे 6 से. मी.	25–30 टन सड़ी हुई गोबर की खाद 80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 40 कि.ग्रा.– फॉस्फोरस 60 कि.ग्रा. पोटास	बुआई के तीन से चार महीने बाद

चुकंदर	18–24° से.	दोमट रेतीली पी.एच. 6.0– 7.5	10–14 कि. ग्रा.	सीधी खेत में बुआई	अगस्त– नवम्बर	पंक्ति से पंक्ति 40 से. मी. पौधे से पौधे 8 से. मी.	50 कि.ग्रा./नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा.– फॉस्फोरस, 50 कि.ग्रा. पोटास	बुआई के नौ सप्ताह बाद
शलजम	18–24° से.	दोमट रेतीली पी.एच. 6.0– 7.5	2.5–3.5 कि. ग्रा.	सीधी खेत में बुआई	एषियाटिक– जुलाई– सितम्बर यूरोपियन– अक्टूबर–नवम्बर	पंक्ति से पंक्ति 30 से. मी. पौधे से पौधे – 5–7 से. मी.	20 टन सड़ी हुई गोबर की खाद 80 कि.ग्रा.– नाइट्रोजन, 50ाह– फॉस्फोरस 50 कि.ग्रा. पोटास	जब जड़ 5–10 से. मी. व्यास के हो जाये
प्याज	वनस्पति वृद्धि के लिए– 13–24° से., बल्ब वृद्धि के लिए– 16–21° से. पकने व् तुड़ाई के समये–30–35° से.	रेतीली दोमट	7–8 कि. ग्रा.	रबी के लिए अक्टूबर – मार्च	पौध तैयार करने के 38–40 दिन बाद	पंक्ति से पंक्ति 20–40 से. मी. पौधे से पौधे –10 से. मी.	20 टन सड़ी हुई गोबर की खाद 150 कि.ग्रा.– नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा. – फॉस्फोरस 80 कि.ग्रा. – पोटास, 50 कि.ग्रा. – सल्फर	जब 50 प्रतिशत डंठल जमीन की ओर मुड़ जाये
लहसुन	15–20° से.	दोमट रेतीली पी.एच. 6.0– 7.5	500 क्लोव्स	सीधी खेत में बुआई	अक्टूबर – मार्च	पंक्ति से पंक्ति 15 से. मी. पौधे से पौधे 8 से. मी.	10–15 टन सड़ी हुई गोबर की खाद 50 कि.ग्रा.– नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा. – फॉस्फोरस 50 कि.ग्रा. – पोटास	जब पत्तिया पिली पड़ने लगे व सूखने लगे
मटर	10–30° से.	रेतीली दोमट पी.एच. 6.0– 8.0	80–100 कि. ग्रा.	सीधी खेत में बुआई	अक्टूबर – नवम्बर	पंक्ति से पंक्ति 45 से. मी. पौधे से पौधे 25 से. मी	20 टन सड़ी हुई गोबर की खाद 30 कि.ग्रा.– नाइट्रोजन, 45 कि.ग्रा. – फॉस्फोरस 50 कि.ग्रा. – पोटास	जब गहरी हरे रंग की फलिया हरी होने लगे
राजमा	15–25° से.	दोमट रेतीली पी. एच. 5.5–6.5	50 कि. ग्रा.	सीधी खेत में बुआई	अक्टूबर – नवम्बर	पंक्ति से पंक्ति 30 से. मी. पौधे से पौधे 10–15 से. मी. गहराई 6–7 से. मी.	10–15 टन सड़ी हुई गोबर की खाद 40 कि.ग्रा.– नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा.– फॉस्फोरस 50 कि.ग्रा.– पोटास	जब फलिया कोमल एवं रेषा मुक्त हो (फूल आने के लगभग 7–10 दिन बाद)

पालक	18–20° से.	बलुई दोमट पी.एच. 6.0–7.0	30 कि.ग्रा.	सीधी खेत में बुआई	सितम्बर– नवम्बर	पंक्ति से पंक्ति 20 से. मी. पौधे से पौधे 5–8 से. मी.	10–15 टन सड़ी हुई गोबर की खाद 100 कि.ग्रा.–नाइट्रोजन, 80 कि.ग्रा.– फॉस्फोरस 80 कि.ग्रा.– पोटास	पत्तिया जब पूर्ण आकर की हरी व कोमल हो जाये,
मैथी	15–20° से.	दोमट रेतीली पी.एच. 6.0–7.0	साधारण मैथी– 30–35 कि. ग्रा. कसूरी मैथी– 20–25 कि. ग्रा.	सीधी खेत में बुआई	अक्टूबर – नवम्बर	पंक्ति से पंक्ति 15–20 से. मी. पौधे से पौधे 5–8 से. मी.	10–15 टन सड़ी हुई गोबर की खाद 20 कि.ग्रा.– नाइट्रोजन, 40 कि.ग्रा.– फॉस्फोरस 50 कि.ग्रा.– पोटास	बुआई के 25–30 दिन बाद इसकी पहली कटाई कर लेनी चाहिए
सलाद	12–20° से.	दोमट रेतीली पी.एच. 6.0–7.0	500 ग्राम	सितम्बर– अक्टूबर	अक्टूबर – नवम्बर	पंक्ति से पंक्ति –30–45 से.मी. पौधें से पौधें 20–30 से.मी.	100 कि.ग्रा.–नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा.– फॉस्फोरस 50 कि.ग्रा.– पोटास,	जब पत्तियाँ आवश्यक आकार की हो जाऐं

तालिका–3 शीतकालीन सब्जियों की प्रमुख बीमारियाँ, कीट एवं प्रबंधन

फसल		प्रमुख बीमारियाँ एवं कीट	प्रमुख लक्षण	निदान
गोभिवर्गीय सब्जिया	प्रमुख बीमारियाँ	काला विगलन	फूल गोभी एवं पत्ता गोभी का प्रमुख रोग हैं, पत्तियों के किनारे पीले पड़ जाते हैं, पत्तियों की शिराओं का रंग काला या भूरा हो जाता हैं।	बीजों को 30 मिनट तक 50° से. तापक्रम पर गर्म पानी में डुबोना लाभदायाक रहता हैं
		काली पर्ण चित्ती	पत्तियों पर छोटे–छोटे गहरे रंग की चित्तीयां बनती हैं जो आपस में मिल कर गोलाकार विक्षत बनाती हैं	मैनेब (0.2 प्रतिशत) के 2–3 छिड़काव करने चाहिए
	प्रमुख कीट	डाइमंड ब्लैक मौथ	इसके शिशु सबसे पहले पत्तियों में छेद कर तने में प्रवेश कर जाते हैं	स्पिनोसेड 2.5 प्रतिशत एस सी (1.2 मि. ली. प्रति ली.) का घोल बना कर 2–3 छिड़काव करे
		एफिड	पत्तियाँ कुरकुरी हो जाती है तथा सूख कर गिर जाती है	इमिड़ाक्लोप्रिड (2 मि. ली. प्रति 10 ली.) का घोल बना कर 2–3 छिड़काव करें
प्याज	प्रमुख बीमारियाँ	बैंगनी धब्बा	रोग ग्रस्त भाग पर छोटे, सफेद, धंसे हुए धब्बे बनते हैं जिसका मध्य भाग बैंगनी रंग का होता हैं	डायथेन जेड–78 (0.2 प्रतिशत)
	प्रमुख कीट	प्याज थ्रिप्स	ये पीले एवं आकार में छोटे कीट होते हैं जो पत्तियों से रस चूसते हैं जिससे उन पर सफेद धब्बे बन जाते हैं	2 प्रतिशत पेराथियोन चूर्ण का 15–25 किलो प्रति हेक्टेयर

मूली	प्रमुख बीमारियाँ	सफेद रस्ट	पत्तियों, तनों तथा पुष्पर्न्तो पर सफेद अनियमित गोलाकार धब्बे बनते हैं	डायथेन जेड–78 (0.3 प्रतिशत)
	प्रमुख कीट	लाही	इसके वयस्क एवं शिशु दोनों ही क्षति पहुचाते हैं, लाही पौधे के कोमल भाग से रस चूसते हैं जिससे पत्तियाँ मुड़ जाती हैं	इमिड़ाक्लोप्रिड (2 मि. ली. प्रति 10 ली. में घोल बना कर) 2–3 छिड़काव 10 दिनों के अन्तर पर करें
मटर	प्रमुख बीमारियाँ	चूर्णित असिता	पत्तियों, फलियों तथा तानों पर सफेद पाउडर सा दिखाई देता है पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं तथा सूख जाती हैं फलियां या तो नहीं बनती या छोटी रह जाती हैं	कैराथेन (0.02 प्रतिशत), बेविस्टीन या बेनलेट (0.1 प्रतिशत) का छिड़काव करें
		फ्यूजेरियम मुरझान	पत्तियाँ पीली पड़ कर नीचे की और मुड़ जाती हैं तथा पूरा पौधा मुरझा जाता है एवं तना सिकुड़ जाता है	बीज को थायरम (2.5 ग्राम प्रति किलो ग्राम बीज) से उपचारित करना चाहिए पौधो को ब्रसिकोल (0.2 प्रतिशत) से भिगोना चाहिए
	प्रमुख कीट	फली छेदक	यह कीट पहले फली कि सतह को खाता है फिर छेद कर, फली के अन्दर चला जाता है तथा दानों को खता है	बी.एच.सी. (5 प्रतिशत) का 18 से 25 किलो प्रति हेक्टेयर भुरकाव करें अथवा सेविन (0.2 प्रतिशत) या मैलाथियान (0.1 प्रतिशत) का छिड़काव करना चाहिए

रबी की मुख्य सब्जियों का समन्वित कीट प्रबंधन

संजीव रंजन सिन्हा, नरेश मेश्राम एवं राकेश कुमार शर्मा
कीट विज्ञान संभाग,
भा.कृ.अ.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली – 110 012

सब्जियाँ पौधों के वह भाग होते हैं जिन्हें मनुष्य या अन्य जन्तु भोजन के रुप में गृहण करते हैं। इसमें फल, फूल, तना, पत्ती, जड. और बीज आदि कोई भी भाग हो सकता है। यह हमारे भोजन को पौष्टिक और संतुलित आहार बनाती हैं जो अच्छे स्वास्थ्य और रोगों की रोकथाम के लिए आवश्यक हैं। इसमें वसा, कैलोरी तथा कोलेस्ट्रॉल कम होता हैं और साथ ही विटामिन ए, बी, सी, ई और के, खनिज पदार्थ, कार्बोहाइड्रेट, फाइबर, फाईटोकैमिकल्स, फोलिक एसिड और प्रोटीन का यह बेहतरीन स्रोत हैं।

विश्व में चीन के बाद सब्जियों के दूसरे सबसे बड़े उत्पादक के रूप में भारत उभरा है। भारत का दुनिया में कुल सब्ज़ी उत्पादन का लगभग 14.04 प्रतिशत योगदान है। भारत में सब्जियों का उत्पादन सन् 2015–16 में 1690.64 लाख मीट्रिक टन था जो कि 101 लाख हेक्टेयर में लगाई गई। सब्जियों के उत्पादन कम होने का एक प्रमुख कारण कीटों और रोगों द्वारा अधिक क्षति होना है। सब्जियों में कीटनाशकों का उपयोग कम करने के लिए एक समन्वित कीट प्रबंधन की प्रणाली को अपनाया जा रहा है। रबी में उगाई जाने वाली सब्जियों में कीट प्रबंधन के लिए यह एक उपयुक्त पद्धति है। रबी की मुख्य सब्जियों में टमाटर, बंद गोभी, फूलगोभी, ब्रोकोली, मिर्च, प्याज़, पालक, मेथी, बथुआ और गाजर आदि हैं।

टमाटर

टमाटर ने अपने विशेष पोषक मूल्यों के कारण ही लोकप्रियता हासिल की है इसी वज़ह से यह लगभग विश्व के हर देश में उगाया जाता है। । इसमें विटामिन ए अथवा सी की अधिक मात्रा के कारण पोषण के क्षेत्र में इसे मूल्यवान माना जाता है। यह एक छोटी अवधि की फसल है जो अधिक उपज के कारण उच्च आर्थिक मूल्य प्रदान करती है। उपभोग तथा निर्यात के उद्देश्य से यह संसोधित रूप में बड़े पैमाने पर उगाए जाते हैं। भारत में टमाटर का उत्पादन 1187.32 लाख टन हुआ। टमाटर की फसल में मुख्य रूप से फल छेदकों से भारी नुकसान होता है।

चने की सुंडी: यह एक बहुभक्षी कीट है जो टमाटर को भारी नुकसान पहुंचाता है। पौधे में फूल आने से पहले के समय में सुंडी कोमल शाखाओं, पत्तियों तथा फूलों को खाती है, जिसके कारण फसल छिद्रित दिखती है। फल लगने के बाद, सुंडी फल में गोल छेद बनाकर अपने शरीर का आधा भाग अंदर घुसाकर फल का गूदा खाती है जिस कारण फल सड़ जाता है।

तम्बाकू की सुंडी: इस बहुभक्षी कीट की सुंडियाँ चिकनी व काले रंग की होती हैं जो कि टमाटर की फसल को काफी नुकसान पहुँचाता है। सुंडी प्रारंभ में समूह में रहकर पत्तियों की ऊपरी सतह को खुरचकर और पूर्ण विकसित सुंडियाँ पत्तियों को काटकर खाती हैं तथा रात के समय में यह अधिक सक्रिय होती है। इसका अधिक प्रकोप होने पर पौधा पत्तीविहीन हो जाता है।

सफेद मक्खी: इसके वयस्क एवं निम्फ पत्तियों का रस चूस लेते हैं तथा पत्ती मरोड़क मोज़ैक बीमारी फैलाते हैं। छोटे सफेद जीव पत्तियों के नीचे पाए जाते हैं। सफेद मक्खी से ग्रसित पत्तियों में काले फफूंद की बीमारी लग जाती है। सफेद मक्खियों द्वारा उत्सर्जित हनी डिऊ के कारण पत्तियों में काले फफूंद की बीमारी लग जाती है।

लीफ़ माइनर: इसकी मादा पत्तों की शिराओं में छेद करके उनमें अण्डे देती हैं। यह पत्तियों का हरा पदार्थ खाकर उनमें सुरंगे बनाती हैं।

प्रबंधन:

1 कीटनाशकों के छिड़काव से पूर्व फलों को तोड़ लें तथा क्षतिग्रस्त फलों को जमीन में गाड़कर नष्ट कर दें।

2 खेतों की गहरी जुताई करने से मिट्टी में मौजूद प्यूपा व सुंडियां पक्षियों द्वारा खा लिए जाते हैं या तेज धूप द्वारा नष्ट हो जाते हैं।

3 पत्ती मरोड़क प्रतिरोधी बीमारी से ग्रसित पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर दें।

4 टमाटर की रोपाई करने के दौरान प्रत्येक 10–15 कतार के बाद गेंदे के पौधों की एक कतार की रोपाई करें। ऐसा करने से चने की सुंडी का नियंत्रण होता है।

5 फल छेदक की निगरानी के लिए पाँच फेरोमोन ट्रैप प्रति हेक्टेयर के दर से लगाएं।

6 आवश्यकता पड़ने पर ही रस चूसने वाले कीटों से बचाव के लिए इमीडाक्लोप्रिड (2मि.ली./10ली.) या थायामिथोक्साम (2ग्रा./10ली.) का प्रयोग करें।

7 *ट्राइकोग्रामा काइलोनिस* का प्रयोग फल छेदक के नियंत्रण के लिए 50,000 प्रति हेक्टेयर के दर से दो से तीन बार करें।

8 सुंडियों से संबंधित एन.पी.वी. का छिड़काव 250एल. ई./है. के दर से करें।

9 बी. टी. का एक या दो छिड़काव 1ग्रा./ली. के दर से 15 दिनों के अंतराल पर करें।

10 फल छेदकों से बचाव के लिए नोवालूरॉन (1मि. ली./ली.)या फ्लूबैन्डामाइड (1मि.ली./4ली.)या इन्डोक्साकार्ब 14.5 ई.सी. (0.5मि.ली./ली.) या लैम्डा साइहैलोथ्रिन 5 ई.सी. (5मि.ली./10ली.) का छिड़काव करें।

गोभीवर्गीय सब्जियाँ

इसमें बंद गोभी, फूलगोभी, ब्रोकोली, नोलखोल आदि मुख्यतः ठंड़े मौसम में उगने वाली सब्जियां हैं। भारत में बंद गोभी का उत्पादन 88.06 लाख मीट्रिक टन है जबकि फूलगोभी का उत्पादन 80.90 लाख मीट्रिक टन है। गोभीवर्गीय सब्जियां ठंड में गर्म मौसम की फसलों की तुलना में बेहतर बढ़ती हैं। ये सब्जियां विटामिन ए, सी, ई, के, बी$_{1,}$ बी$_{2}$, बी$_{3}$, बी$_{5}$, बी$_{6}$ एवं फोलेट, फाइबर, फैटी एसिड, मैंगनीज़, पोटेशियम, फास्फोरस, कैलशियम, मैग्नीशियम, लोहा, जस्ता तथा प्रोटीन का एक बेहतरीन स्रोत हैं। गोभीवर्गीय सब्जियों में सबसे ज्यादा नुकसान चेंपे और डायमंड बैकमाथ के द्वारा होता है। यदि विभिन्न कीटों द्वारा क्षति की पहचान कर ली जाए तो इनके नियंत्रण में आसानी होती है। आजकल तम्बाकू की सुण्डी द्वारा भी काफी नुकसान देखा जा रहा है।

चेंपाः यह कीट पंखहीन हल्के हरे रंग के होते हैं और गोभी के पत्तों की निचली सतह पर मिलते हैं। ये पत्तियों, पुष्पक्रम तथा तनों से रस चूसकर उन्हें नुकसान पहुँचाते हैं जिसके कारण पौधों के स्वास्थ्य एवं उपज कम हो जाती है तथा स्वस्थ फूल के गठन में कठिनाई आती है। इस कीट से निकले चिपचिपे पदार्थ से पत्तों पर काली फफूंदी लग जाती है जो पौधों को भोजन बनाने में बाधा डालती है।

डायमंड बैकमाथ (डी. बी. एम.): इस कीट के पतंगे भूरे रंग के होते हैं। इनके पंखो पर विशिष्ट सफेद धब्बे होते हैं जिसकी वजह से यह हीरे की तरह दिखाई देते हैं। सुंडियाँ पत्तियों की निचली सतह को खाकर हानि करती हैं। पत्तों पर सुंडियों के मल के कारण काले फफूँद की बीमारी लग जाती है। अधिक आक्रमण होने पर सुंडियाँ गोभी के फल को भी खाने लगती हैं। पत्तों को धीरे से हिलाने पर सुंडी नीचे की तरफ धागे जैसे पदार्थ की सहायता से लटक जाती है, जो इसकी खास पहचान है।

गोभी की तितली वाली सुंडीः यह हल्के पीले रंग की सुंडी बन्दगोभी में हर जगह पाई जाती है। छोटी सुंडियाँ समूह में रहकर व बड़ी होने पर इधर–उधर फैलकर हानि करती हैं। यह अधिकतर पत्तों को बाहरी किनारों को खाते हुए अंदर की ओर बढ़ती हैं। अधिक आक्रमण होने पर पत्तों की शिराएं ही शेष रह जाती हैं। पत्तों की भोजन बनाने की शक्ति कम होने से पैदावार घट जाती है। यह बन्दगोभी में छेद कर देती हैं और उसे मल से दूषित भी कर देती हैं। इसका आक्रमण फूलगोभी में भी होता है।

तम्बाकू की सुंडीः इसकी सुंडियाँ मखमल के समान चिकने व काले रंग की होती हैं जो कि रात में पत्तों तथा नई बढ़वार को खाती हैं पर दिन में मिट्टी या पौधों के नीचे छुपी रहती हैं।

कूबड़ या सेमीलूपर कीटः इसकी सुंडियाँ कुछ पीलापन लिए हरे रंग की होती हैं व चलने पर कूबड़ सा आकार बना लेती हैं। सुंडियाँ सर्दियों में कई प्रकार की सब्जियों के पत्तों को खाकर इनमें गोलाकार छेद कर देती हैं। अधिक आक्रमण होने पर सुंडियां पौधों को पत्तीविहीन कर देती हैं।

हलूलाः यह भूरे रंग का होता है तथा प्रारंभिक अवस्था में पत्तियों में छेद करता है व बाद में फल में भी छेद कर देता है। युवा सुंडियाँ पत्तों में सुरंगें बना देती हैं। यह सुरंगें सफेद रंग की होती हैं। यह सुंडियाँ बड़ी होकर पौधे की मुख्य शाखाओं को खत्म कर देती हैं, जिसके कारण पौधे में गोभी का फूल नहीं बन पाता। यह कीट युवा पौधों और नर्सरी का मुख्य कीट है।

चित्तेदार बगः इसके शिशु एवं वयस्क कीट पत्ते की कोशिकाओं के रस चूस लेते हैं। ग्रसित पत्तियों पर सफेद धब्बे पड़ जाते हैं। पत्ते मुरझा जाते हैं और युवा पौधे अक्सर पूरी तरह से मर जाते हैं।

प्रबंधनः

1. खेत की गहरी जुताई करें ताकि कीट और रोग के जीवाणु पक्षियों द्वारा खा लिए जाए अथवा तेज धूप द्वारा नष्ट कर दिया जाए।
2. पौधों के रोपण से पहले जड़ का इमीडाक्लोप्रिड (3मि.ली./10ली.) द्वारा उपचार 3–4 घंटों के लिए करें।
3. फसल की बढ़वार की अवस्था में नीम अर्क का 2 से 3 बार 10–15 दिनों के अन्तराल पर करने पर छिड़काव करने से कीटों के प्रकोप में कमी आ जाती है। यह छिड़काव दोपहर बाद ही करना चाहिए।
4. सुंडियों के परजीवी कोटेशिया प्लूटेली का प्रयोग 1000 वयस्क प्रति हेक्टेयर के दर से करने पर कीटनाशकों के प्रयोग में कमी आती है।
5. मित्र कीटों (लेडी बर्ड बीटिल, सिर्फिड आदि) की बढोतरी के लिए मुख्य फसल के चारों तरफ और बीच–बीच में हर 20–25 लाइनों के बाद बरसीम, रिजका या मेथी उगाएं, इस कारण चेंपा का प्रभाव कम हो जाता है।
6. यदि आवश्यक हो तो रस चूसने वाले कीटों से बचाव के लिए थायामिथोक्साम (2ग्रा./10ली.) का प्रयोग करें।
7. डायमंड बैक मोथ (डी०बी०एम०) के नियंत्रण के लिए कार्टप (1ग्रा./ली.) अथवा नोवाल्यूरॉन (1 मि.ली/ली.)या फ्लूबैन्डामाइड (1मि.ली./4 ली.) का छिड़काव करें।
8. एन.पी.वी.(250एल.ई/है.) का छिड़काव फूल आने की अवस्था में तम्बाकू की सुंडियों के नियंत्रण के लिए करें।
9. उपरोक्त नियंत्रण अपनाने के बाद भी यदि कीटों की मात्रा अधिक हो तो स्पाइनोसैड़ (3 मि.लि./10लि.) या इमामेक्टिन बेन्जोएट (2ग्रा./10ली.) या फिप्रोनिल (2 मि.ली/ली.) या क्लोरेन्ट्रेनिप्रोले (1 मि.ली./10ली.) या साइपरमेथरिन (1 मि.ली/ली.) का प्रयोग करें।

मिर्ची

मिर्च सब्जी, मसाले, औषधीय जड़ी बूटी और सजावटी पौधे के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसका एक घटक के रूप में औद्योगिक उत्पादों में भी प्रयोग होता है। यह विटामिन ए, सी तथा फाइबर का एक बहुत अच्छा स्रोत है। मिर्ची में कई रसायनिक घटक होते हैं जो रोगों को रोकने, स्वास्थ्य के गुणों को बढ़ावा देने और कोलेस्ट्राल के स्तर को भी घटाते हैं। इसका उत्पादन भारत में 187.32 लाख टन था। इस फसल में मुख्य रूप से माइट एवं थ्रिप्स या कभी–कभी फल छेदकों से भी भारी नुकसान होता है।

माइटः इसके शिशु एवं वयस्क दोनों ही हानिकारक हैं जो अपने थूक से पत्तियों पर जाला सा बुनकर हरा पदार्थ खाती रहती हैं। इन जालों में हजारों की संख्या में माइट मिलती हैं। इसके प्रभाव से पत्तियां टेढ़ी भी पड़ जाती हैं और उन पर धब्बे पड़ जाते हैं, फलस्वरूप हानि होती है।

थ्रिप्सः इसके शिशु एवं वयस्क दोनों ही हानि पहुँचाते हैं। यह पत्तियों के हरे भाग को खरोंच कर खाते हैं, जिससे पत्तियों पर धब्बे पड़ जाते हैं। यह फूल एवं कोमल तनों का रस भी चूसते हैं। फलस्वरूप, पत्तियां, फल एवं कलियाँ

सिकुड़ जाती हैं। इसके अधिक प्रभाव से पौधों की बढ़वार रूक जाती है। इनके प्रभाव से विषाणु बीमारियां भी मिर्च में फैलती हैं। थ्रिप्स का प्रभाव ऐसे खेतों में अधिक होता हैं जहाँ खेत सूखे होते हैं। इस कीट का प्रकोप सितम्बर से अक्तूबर तक अधिक रहता है। अधिक आक्रमण होने पर फल बनने की प्रक्रिया में कमी आती है और वह परिपक्व होने से पहले ही झड़ जाते हैं।

चेंपाः यह पंखदार तथा पंखविहीन दोनों ही प्रकार के होते हैं। पूर्ण विकसित चेंपा लगभग 1.75 से 1.90 मि.मी. लम्बा होता है और पंख की फैली अवस्था में 3.25 मि.मी. लम्बा होता है। पंखदार चेंपा में धारियां भी पाई जाती हैं। यह पत्तियों, कोमल तनों पर हजारों की संख्या में पाए जाते हैं तथा रस चूसकर पौधे को कमजोर कर देते हैं। कभी–कभी यह पत्तियों के ऊपर भी मिलते हैं।

फल छेदकः इसकी सुंडियां फलों के अन्दर घुसकर उन्हें नष्ट कर देती हैं।

प्रबंधनः

1. थ्रिप्स के नियंत्रण के लिए थायाक्लोप्रिड 21.7 एस. सी. (2मि. ली./10ली.) का छिड़काव करें।
2. चेंपा की रोकथाम के लिए कार्बोसल्फॉन 25ई०सी० (2मि.ली./ली.) का छिड़काव करें ।
3. माइट को प्रोपेगाइट (2मि.ली./ली.) या स्पाइरोमेसिफेन 22.9 एस.सी. (1मि.ली./ली.) के छिड़काव से नियंत्रित किया जा सकता है।
4. थ्रिप, माइट और फल छेदक के नियंत्रण के लिए एमामेक्टिन बेंजोएट (2ग्रा./10ली.) या इन्डोक्साकार्ब +एसीटामिप्रिड (1मि.ली./ली.) का छिड़काव करें।
5. फल छेदक के नियंत्रण के लिए स्पाइनोसैड (2 मि.ली./10 ली.) या नोवालूरॉन (1मि.ली./ली.) या क्लोरेन्ट्रेनिप्रोले (1मि.ली./4ली.) का छिड़काव करें।

प्याज़

प्याज़ में विटामिन सी, फोलेट, फाइबर, कैलशियम, लोहा तथा प्रोटीन का एक बेहतरीन स्रोत हैं। इसमें विभिन्न प्रकार के पोषक तत्व होते है जो पाचन शक्ति को बढ़ाते हैं। इस फसल में मुख्य रूप से थ्रिप्स से नुकसान अधिक होता है।

थ्रिपः शिशु और वयस्क दोनों ही पत्तियों के हरे भाग को खरोंच कर खाते हैं और रस भी चूसते हैं। प्रभावित पौधों की पत्तियां पौधों के ऊपरी भाग से सूखना प्रारंभ करती हैं और धीरे–धीरे पूरा पौधा सूखकर मर जाता है।

प्रबंधनः

1. निकाई या गुड़ाई करके खेत को साफ रखें।
2. ग्रसित खेत में पानी भरके थ्रिप्स की संख्या को नियंत्रित किया जा सकता है।
3. थ्रिप के नियंत्रण के लिए डाइमैथोएट (2मि.ली./ली.) या लैम्डासाइहैलोथ्रिन 5 ई.सी. (5 मि.ली. /10ली.) का छिड़काव करें।

पत्तीदार सब्जियाँ

पालक, मेथी, बथुआ आदि रबी की सब्जियाँ में आते हैं जो कि पोषण की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण होती है। इनमें सभी आवश्यक तत्व जैसे विटामिन ए, सी, के, सोडियम, पोटेशियम, फॉस्फोरस, मैगनीशियम, कैलशियम, लोहा, जस्ता तथा फाइबर का एक बहुत अच्छा स्रोत है। इस फसल को मुख्य रूप से पालक भृंग और चेंपा से नुकसान होता है।

पालक भृंगः भृंग पत्तियों को छेद करके नुकसान पहुंचाते हैं।

चेंपाः निम्फ़ एवं वयस्क कोमल पत्तियों के रस चूसकर पौधे को कमजोर बना देते हैं।

प्रबंधन –

1. नीम तेल (1500पी.पी.एम.) या नीम के अर्क (एन.एस. के.ई.) के 5 प्रतिशत घोल का छिड़काव करने पर कीटों के प्रकोप में कमी आ जाती है।
2. अत्यधिक आवश्यकता पडने पर ही चेंपा से बचाव के लिए इमीडाक्लोप्रिड (2मि.ली./10ली.) या डाइमैथोएट (2मि.ली./ली.) का प्रयोग करें।
3. आवश्यकता होने पर स्पाइनोसैड (2मि.ली./10ली.)

या इन्डोक्साकार्ब 14.5 ई.सी.(0.5मि.ली./ली.) का छिड़काव करें।

गाजर

गाजर हमारे शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाती है। इसमें विटामिन ए (बीटा कैरोटिन), बी$_6$, के, फाइबर, कार्बोहाइड्रेट, पोटेशियम तथा प्रोटीन होता हैं। गाजर का उत्पादन भारत में 13.38 लाख मीट्रिक टन था। मुख्य रूप से गाजर के घुन (वीविल) और जंगमक्खी से नुकसान होता है।

गाजर के घुन (वीविल): कीट के शिशु उपरी हिस्से मे सुरंग बनाकर क्षति पहुंचाते हैं।

जंग मक्खी: इस कीट के मैगट जड़ों के रेशे (हेयर) खा जाते है और फिर जड़ों मे सुरंग बनाकर उन्हें क्षति पहुंचाते हैं।

प्रबंधन

1 संक्रमित गाजरों को तुरन्त हटा दें या खेत से अनावश्यक खरपतवार को साफ करें।

2 नीम के अर्क (एन.एस.के.ई.) का 5 प्रतिशत घोल का छिड़काव करने पर या नीम तेल (1500 पी.पी. एम.) का छिड़काव करने पर गाजर के वयस्क घुन के प्रकोप में कमी आ जाती है।

3 गाजर के घुन से बचाव के लिए इमीडाक्लोप्रिड (2मि.ली./10ली.) या डाइमैथोएट (2मि.ली./ली.) का प्रयोग करें।

4 गाजर के घुन से बचाव के लिए अब दूसरे देशों में लैम्डा साइहैलोथ्रिन 5ई.सी. (5मि.ली./10ली.) या नोवालूरॉन (1मि.ली./ली.) के छिड़काव की सिफ़ारिश की गई है।

5 जंगमक्खी से सुरक्षा के लिए क्लोरपाइरीफॉस 0.1 प्रतिशत की दर से सराबोर करें।

सारणी 1: रबी की सब्जियों के कीट प्रबंधन के उपयोग मे लाए जाने वाले कीटनाशकों की मात्रा

कीटनाशक	फॉमुलेशन	मात्रा	मात्रा (ग्रा./ए.आई./है.)	फार्मूलेटिड कीटनाशक (मि.लि./ग्रा./है.)	कीटनाशक/पानी
कार्बोसल्फान	25 एससी	0.05	250	1000	2 मि.ली./ ली.
कार्टप हाइड्रोक्लोराइड	50 एसपी	0.05	50	500	1 ग्रा./ली.
क्लोरएन्ट्रानिलीप्रोल	18.5 एससी	0.0002-0.0006	10-30	50-150	1-3 मि.ली./ 10 ली.
क्लोरपाइरीफॉस	20 ईसी	0.04	200	1000	2 मि•ली/ ली•
साइपरमेथ्रिन	10 ईसी	0.01& 0.014	50&70	550&760	1 मि•ली/ ली•
डाईमैथोएट	30 ईसी	0.04 & 0.08	200&600	600&1980	1-2 मि•ली/ ली•
इमामेक्टिन बेंजोएट	5 एसजी	0.002	10	200	2 गा/10 ली•
फिप्रोनिल	5 ईसी	0.01	50-100	1000-2000	2 मि•ली/ ली•
फ्लूबैन्डामाइड	20 एसजी	0.0025-0.0005	25-50	125-250	1 मि•ली/4 ली•
इमीडाक्लोप्रिड	17.8 एसएल	0.004	20	112	2 मि•ली 10 ली•
इन्डोक्साकाब	14.5 एससी	0.006-0.015	30-75	200-500	0.5 -1 मि•ली/ ली•
इन्डोक्साकाब +एसीटामिप्रिड	14.5+7.7 एससी	0.008-01	88-111	400-500	0.8-1 मि•ली/ ली•
लैम्डा साइहैलोथ्रिन	5 ईसी	0.003-0.005	15-25	300-500	0.5 -1 मि•ली/ ली•
नोवालूरॉन	10 ईसी	0.015	75	750	1 मि•ली/ ली•
प्रोपर गाइट	57 ईसी	0.10	570	1000	2.5 मि•ली/ ली•
थायाक्लोप्रिड	21.7 एससी	0.005-0.01	24-72	100-125	2 मि•ली /10L

कृषि क्षेत्र में सौर ऊर्जा के उपयोग

प्रमोद कुमार शर्मा
कृषि अभियांत्रिकी संभाग
भा.कृ.अ.प–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

सौर ऊर्जा वह उर्जा है जो सीधे सूर्य से प्राप्त की जाती है। सौर उर्जा ही मौसम एवं जलवायु का परिवर्तन करती है। यहीं धरती पर सभी प्रकार के जीवन (पेड़–पौधे और जीव–जन्तु) का सहारा है। सूर्य की शक्ति हमें आदिकाल से आकर्षित करती रही है, क्योंकि यह प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है और हमें जीवाश्म ईंधन का एक अच्छा विकल्प देती है। जब मनुष्य ने आग जलाना नहीं सीखा था, तब भी सूर्य की किरणों से मिलने वाले ताप से वह चमत्कृत हो उठता था। इसीलिए हमारे मिथकों में सूर्य को सबसे प्रभावशाली देवता के रूप में चित्रित किया गया है।

भारत को सौर ऊर्जा का भरपूर वरदान मिला हुआ है। अगर इसका कुशलतापूर्वक उपयोग किया जाए, तो देश हजारों किलोवॉट बिजली का उत्पादन कर सकता है। सौर ऊर्जा बहुत फायदेमंद है, क्योंकि यह प्रदूषण नहीं फैलाती और इसका वितरण आसानी से किया जा सकता है। और सबसे बड़ी बात यह है कि इसके लिए कहीं एक जगह बहुत बड़ा केंद्रीय प्लांट लगाने की जरूरत नहीं है। इसे बेहद आसानी से कई जगहों से, कई छोटी–छोटी यूनिटों से बनाया और बांटा जा सकता है। इससे ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करके जलवायु परिवर्तन से भी निपटा जा सकता है। इसका अधिक से अधिक उपयोग करने के लिए हमें मिलकर अपने लिए सुविधाजनक तकनीक विकसित करनी होगी।

पृथ्वी प्रतिवर्ष भरपूर सौर ऊर्जा प्राप्त करती है। इस सौर ऊर्जा से हम अपनी जरूरतें बहुत आसानी से पूरी कर सकते हैं। साथ ही भविष्य की बढ़ती जरूरतों को पूरा करने के लिए भी इस अक्षय स्त्रोत पर भरोसा किया जा सकता है। वास्तव में, सौर ऊर्जा ही हमारा वह सबसे बड़ा संसाधन है जिसका उपयोग ऊर्जा की हर जरूरत को पूरा सकता है। यहां एक साल में मनुष्य द्वारा ऊर्जा की जो कुल खपत होती है, उतनी सौर ऊर्जा सिर्फ एक दिन में ही धरती पर पहुंच जाती है। सौर ऊर्जा का इस्तेमाल अब इसलिए भी जरूरी होता जा रहा है क्योंकि जीवाश्म ईंधन के तमाम भंडार तेजी से घट रहे हैं और ग्रीन हाउस गैसों का प्रभाव बढ़ रहा है। साथ ही निकट भविष्य में हमें बिजली क्षेत्र से होने वाले कार्बन उत्सर्जन की सीमा भी कम करनी है। भारत में साल के 365 दिनों में तकरीबन 250 से 325 दिन अच्छी धूप वाले होते हैं। इन दिनों में सोलर रेडिएशन की तीव्रता काफी ज्यादा होती है। अगर इनका समुचित दोहन किया जाए तो हम अपनी आवश्यकता के अनुरूप सोलर उर्जा प्राप्त कर सकते हैं, पर इसके लिए हमें सबसे पहले तो मानसिक तौर पर तैयार होना होगा। फिर अपेक्षित तकनीकी संयंत्र लगाने होंगे। जाहिर है, इसके लिए काफी निवेश भी करना होगा।

भारत में सौर ऊर्जा प्राप्त करने लायक दुनिया के कुल भूमि क्षेत्र का 58 फीसदी भाग पाया जाता है। इस मौजूदा स्तर को देखते हुए केवल एक फीसदी भूमि क्षेत्र ही 2031 तक की देश की ऊर्जा जरूरतों को पूरा करने के लिए काफी है। लेकिन इस क्षेत्र में जितना काम होना चाहिए था, वह नहीं हो सका है। आज भी हम ऊर्जा के लिए मुख्यतः थर्मल पावर पर आश्रित हैं जबकि हमारे पास कोयले का पर्याप्त भंडार भी नहीं है। हमारे देश में राजस्थान सालाना सबसे अधिक सोलर रेडिएशन प्राप्त करता है। यहां लगभग पूरे साल मिलने वाला भरपूर सोलर रेडिएशन और अनुकूल शर्तें राज्य को ग्रीन एनर्जी का हब बनाने की क्षमता रखती हैं। यह सौर ऊर्जा का सबसे बड़ा प्रोवाइडर बन सकता है। इससे न सिर्फ राज्य की आर्थिक स्थिति बदल सकती है, बल्कि पूरे देश को फायदा पहुंच सकता है।

वैसे तो सौर उर्जा के विविध प्रकार से प्रयोग किया जाता है, किन्तु सूर्य की उर्जा को विद्युत उर्जा में बदलने को ही मुख्य रूप से सौर उर्जा के उपयोग के रूप में जाना जाता है। सूर्य की उर्जा को दो प्रकार से विदुत

उर्जा में बदला जा सकता है। पहला प्रकाश–विद्युत सेल की सहायता से और दूसरा किसी तरल पदार्थ को सूर्य की उष्मा से गर्म करने के बाद इससे विद्युत जनित्र चलाकर।

उपयोग

सौर ऊर्जा, जो रोशनी व उष्मा दोनों रूपों में प्राप्त होती है, का उपयोग कई प्रकार से हो सकता है। सौर उष्मा का उपयोग अनाज को सुखाने, जल उष्मन, खाना पकाने, प्रशीतलन, जल परिष्करण तथा विद्युत ऊर्जा उत्पादन हेतु किया जा सकता है। फोटो वोल्टायिक प्रणाली द्वारा सौर प्रकाश को बिजली में रूपान्तरित करके रोशनी प्राप्त की जा सकती है, प्रशीतलन का कार्य किया जा सकता है, दूरभाष, टेलीविजन, रेडियो आदि चलाए जा सकते हैं, तथा पंखे व जल–पम्प आदि भी चलाए जा सकते हैं।

सौर जल उष्मन : जल का उष्मन सौर–उष्मा पर आधारित सौर ऊर्जा प्रौद्योगिकी का उपयोग घरेलू, व्यापारिक व औद्योगिक इस्तेमाल के लिए जल को गरम करने में किया जा सकता है। देश में पिछले दो दशकों से सौर जल–उष्मक बनाए जा रहे हैं। भारत सरकार का अपारम्परिक ऊर्जा स्रोत मंत्रालय इस ऊर्जा के उपयोग को प्रोत्साहन देने हेतु प्रौद्योगिकी विकास, प्रमाणन, आर्थिक एवं वित्तीय प्रोत्साहन, जन–प्रचार आदि कार्यक्रम चला रहा है। इसके फलस्वरूप प्रौद्योगिकी अब लगभग परिपक्वता प्राप्त कर चुकी है तथा इसकी दक्षता और आर्थिक लागत में भी काफी सुधार हुआ है। वृहद् पैमाने पर क्षेत्र–परिक्षणों द्वारा यह साबित हो चुका है कि आवासीय भवनों, रेस्तराओं, होटलों, अस्पतालों व विभिन्न उद्योगों (खाद्य परिष्करण, औषधि, वस्त्र, डिब्बा बन्दी, आदि) के लिए यह एक उचित प्रौद्योगिकी है। जब हम सौर उष्मक से जल गर्म करते हैं तो इससे उच्च आवश्यकता वाले समय में बिजली की बचत होती है। 100 लीटर क्षमता के 1000 घरेलू सौर जल–उष्मकों से एक मेगावाट बिजली की बचत होती है। साथ ही 100 लीटर की क्षमता के एक सौर उष्मक से कार्बन डाई आक्साइड के उत्सर्जन में प्रतिवर्ष 1.5 टन की कमी होगी। इन संयंत्रों का जीवन–काल लगभग 15–20 वर्ष का है।

सोलर कुकर : सौर उष्मा द्वारा खाना पकाने से विभिन्न प्रकार के परम्परागत ईंधनों की बचत होती है। बाक्स सोलर कुकर, वाष्प सोलर कुकर व उष्मा भंडारक प्रकार के भोजन सोलर कुकर, सामुदायिक सोलर कुकर आदि प्रकार के सोलर कुकर विकसित किए जा चुके हैं। ऐसे भी बाक्स सोलर कुकर विकसित किए गये हैं जो बरसात या धुंध के दिनों में बिजली से खाना पकाने हेतु प्रयोग किए जा सकते हैं।

सौर शुष्कक: सूरज की गर्मी के प्रयोग द्वारा कटाई के पश्चात कृषि उत्पादों व अन्य पदार्थों को सुखाने के लिए उपकरण विकसित किए गये हैं। इन पद्धतियों के प्रयोग द्वारा खुले में अनाजों व अन्य उत्पादों को सुखाते समय होने वाले नुकसान कम किए जा सकते हैं। चाय पत्तियों, लकड़ी, मसाले आदि को सुखाने में इनका व्यापक प्रयोग किया जा रहा है।

सौर स्थापत्य : किसी भी आवासीय व व्यापारिक भवन के लिए यह आवश्यक है कि उसमें निवास करने वाले व्यक्तियों के लिए वह सुखकर हो। सौर–स्थापत्य वस्तुतः जलवायु के साथ सामन्जस्य रखने वाला स्थापत्य है। भवन के अन्तर्गत बहुत सी अभिनव विशिष्टताओं को समाहित कर जाड़े व गर्मी दोनों ऋतुओं में जलवायु के प्रभाव को कम किया जा सकता है। इसके चलते परम्परागत ऊर्जा (बिजली व ईंधन) की बचत की जा सकती है।

सौर फोटो वोल्टायिक : सौर फोटो वोल्टायिक तरीके से ऊर्जा, प्राप्त करने के लिए सूर्य की रोशनी को सेमीकन्डक्टर की बनी सोलर सेल पर डाल कर बिजली पैदा की जाती है। इस प्रणाली में सूर्य की रोशनी से सीधे बिजली प्राप्त कर कई प्रकार के कार्य सम्पादित किये जा सकते हैं। भारत उन अग्रणी देशों में से एक है जहाँ फोटो वोल्टायिक प्रणाली प्रौद्योगिकी का समुचित विकास किया गया है एवं इस प्रौद्योगिकी पर आधारित विद्युत उत्पादक इकाईयों द्व ारा अनेक प्रकार के कार्य सम्पन्न किये जा रहे हैं। देश में नौ कम्पनियों द्वारा सौर सेलों का निर्माण किया जा रहा है। भारत सरकार का अपारम्परिक ऊर्जा स्रोत मंत्रालय सौर लालटेन, सौर–गृह, सौर सार्वजनिक प्रकाश प्रणाली, जल–पम्प, एवं ग्रामीण क्षेत्रों के लिए एकल फोटोवोल्टायिक ऊर्जा संयंत्रों के विकास, संस्थापना आदि को प्रोत्साहित कर रहा है। फोटो वोल्टायिक प्रणाली माड्यूलर प्रकार की होती है। इनमें किसी प्रकार के जीवाष्म उर्जा की खपत नहीं होती है तथा इनका रख रखाव व परिचालन सुगम है। साथ ही ये पर्यावरण सुहृद हैं। दूरस्थ स्थानों, रेगिस्तानी

इलाकों, पहाड़ी क्षेत्रों, द्वीपों, जंगली इलाकों आदि, जहाँ प्रचलित ग्रिड प्रणाली द्वारा बिजली आसानी से नहीं पहुँच सकती है, के लिए यह प्रणाली आदर्श है।

सौर लालटेन : सौर लालटेन एक हल्का ढोया जा सकने वाली फोटो वोल्टायिक तंत्र है। इसके अन्तर्गत लालटेन, रख रखाव रहित बैटरी, इलेक्ट्रानिक नियंत्रक प्रणाली, व 7 वाट का छोटा फ्लुओरेसेन्ट लैम्प युक्त माड्यूल तथा एक 10 वाट का फोटो वोल्टायिक माड्यूल आता है। यह घर के अन्दर व घर के बाहर प्रतिदिन 3 से 4 घंटे तक प्रकाश दे सकने में सक्षम है। किरासिन आधारित लालटेन, ढ़िबरी, पेट्रोमैक्स आदि का यह एक आदर्श विकल्प है। इनकी तरह न तो इससे धुआँ निकलता है, न आग लगने का खतरा है, और न स्वास्थ्य का।

सौर जल–पम्प : फोटो वोल्टायिक प्रणाली द्वारा पीने व सिंचाई के लिए कुओं आदि से जल का पम्प किया जाना भारत के लिए एक अत्यन्त उपयोगी प्रणाली है। सामान्य जल पम्प प्रणाली में 900 वाट का फोटो वाल्टायिक माड्यूल, एक मोटर युक्त पम्प एवं अन्य आवश्यक उपकरण होते हैं। अबतक काफी सौर जल पम्प संस्थापित किये जा चुके हैं।

ग्रामीण विद्युतीकरण (एकल बिजली घर) : फोटोवोल्टायिक सेलों पर आधारित इन बिजली घरों से ग्रिड स्तर की बिजली ग्रामवासियों को प्रदान की जा सकती है। इन बिजली घरों में अनेकों सौर सेलों के समूह, स्टोरेज बैटरी एवं अन्य आवश्यक नियंत्रक उपकरण होते हैं। बिजली को घरों में वितरित करने के लिए स्थानीय सौर ग्रिड की आवश्यकता होती है। इन संयंत्रों से ग्रिड स्तर की बिजली व्यक्तिगत आवासों, सामुदायिक भवनों व व्यापारिक केन्द्रों को प्रदान की जा सकती है। इनकी क्षमता 1.25 किलोवाट तक होती है। अबतक लगभग एक मेगावाट की कुल क्षमता के ऐसे संयंत्र देश के विभिन्न हिस्सों में लगाए जा चुके हैं। इनमें उत्तर प्रदेश, देश का उत्तर पूर्वी क्षेत्र, लक्षद्वीप, बंगाल का सागर द्वीप, व अन्डमान निकोबार द्वीप समूह प्रमुख हैं।

सार्वजनिक सौर प्रकाश प्रणाली : ग्रामीण इलाकों में सार्वजनिक स्थानों एवं गलियों, सड़कों आदि पर प्रकाश करने के लिए ये उत्तम प्रकाश स्रोत है। इसमें 74 वाट का एक फोटो वोल्टायिक माड्यूल, एक 75 अम्पीयर–घंटा की कम रख–रखाव वाली बैटरी तथा 11 वाट का एक फ्लुओरेसेन्ट लैम्प होता है। शाम होते ही यह अपने आप जल जाता है और प्रातःकाल बुझ जाता है।

घरेलू सौर प्रणाली के अन्तर्गत 2 से 4 बल्ब (या ट्यूब लाइट) जलाए जा सकते हैं, साथ ही इससे छोटा डीसी पंखा और एक छोटा टेलीविजन 2 से 3 घंटे तक चलाए जा सकते हैं। इस प्रणाली में 37 वाट का फोटो वोल्टायिक पैनेल व 40 अंपियर–घंटा की अल्प रख–रखाव वाली बैटरी होती है। ग्रामीण उपयोग के लिए इस प्रकार की बिजली का स्रोत ग्रिड स्तर की बिजली के मुकाबले काफी अच्छा है। अबतक पहाड़ी, जंगली व रेगिस्तानी इलाकों के काफी घरों में यह प्रणाली लगायी जा चुकी है।

इसके लिए 100 वाट की चार सोलर मॉडुल, 1400 वीये का इन्वर्टर, 12 वोल्ट एवं 150 ऐएच की दो बैटरी का प्रयोग किया गया 12 वोल्ट की दोनों बैटरी को आपस में सीरीज में जोड़कर 24 वोल्ट बनाये गए एवं 100 वाट की दो मॉडुल को सीरीज में जोड़कर 24 वोल्ट की एक स्ट्रिंग बनाई गयी फिर इन स्ट्रिंग को सामानांतर (पैरेलल) में जोड़कर २४ वोल्ट बनाये गए सौर पैनल से आये दोनों तार इन्वर्टर से जोड़ दिए जातें हैं इन्वर्टर से आये तार बैटरी से जोड़ दिए जातें हैं। इस प्रकार इन्वर्टर से हमें सिंगल फेज ऐसी प्राप्त होती है और एक सोलर पावर पैक तैयार हो जाता है इससे उपलब्ध विद्युत पावर का इस्तेमाल पावर (वाट) के अनुसार किसी भी उपकरण को चलाने में किया जा सकता है।

कमियां: सौर ऊर्जा की कई परेशानियां भी होती हैं। व्यापक पैमाने पर बिजली निर्माण के लिए पैनलों पर भारी निवेश करना पड़ता है। दूसरा, दुनिया में अनेक स्थानों पर सूर्य की रोशनी कम आती है, इसलिए वहां सोलर पैनल कारगर नहीं हैं। तीसरा, सोलर पैनल बरसात के मौसम में ज्यादा बिजली नहीं बना पाते। फिर भी विशेषज्ञों का मत है कि भविष्य में सौर ऊर्जा का अधिकाधिक प्रयोग होगा।

बाजरा : पोषण और शुष्क खेती के लिए अनमोल देन

मोनिका सातनकर, विष्णु आनंद एवं शालिनी गौड़ रूद्रा
खाद्य विज्ञान एवं फसलोत्तर प्रौद्योगिकी संभाग
भा.कृ.अनु.प.—भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली— 110012

बाजरा एक बहुमुखी अनाज कि फसल है जिसका उपयोग भोजन चारा और खाद्य के रूप में प्रमुखता से अफ्रीका और एशियन देशों में किया जाता है। भारत में बाजरे का अनाज की खेती कि श्रेणी में धान, गेहूं और मक्को के बाद चौथा स्थान है।

बाजरे कि फसल कि विशेषता यह है कि यह शुष्क प्रदेशों एवं अधिक तापमान में भी उग पाता है। जिस जगह गेहूं, मक्का और अन्य फसलें विफल हो जाती है, वहां बाजरा जीविका एवं पोषण का अच्छा विकल्प है।

उत्पादन व उत्पादकता

सभी मोटे अनाजों कि श्रेणी में सर्वाधिक क्षेत्रफल (29 मि. है.) बाजरे ने अधिकृत किया है। बाजरे का उत्पांदन भौगोलिक रूप से अफ्रीका (15 मिलियन है.) और एशिया (11 मि. है.) में सीमित है। एफ.ए.ओ. (2016) के अनुसार विश्व में कुल (76.18 मि. है.) भूमि से 94.3 (मि. टन) मोटे अनाज उगाये गए है जिसका 91.06% ज्वार व बाजरा ही है।

भारत एशिया में सर्वाधिक बाजरा का उत्पादक राष्ट्र है जो कि 7.13 मि. है. भूमि से 10.3 मि. टन बाजरा उत्पादन करता है। भारत के बाद क्रमशः नाईजिरिया (3.8 मि. है.) व चीन (1.9 मि. टन) उत्पादक राष्ट्र है। भारत ही सामक (99%)रागी (53.3%) कोदो (100%) एवं बाजरा (45.5%) का सर्वोच्चम उत्पादक है। ये सभी अल्प मोटे अनाज 12—45 लाख मि. टन, 8.86 लाख हेक्टेयर जमीन पर उगाया जाते है।

भारत में बाजरे की कुछ संकर प्रजातियां विकसित कि गई है, जिनमें लौह एवं जिंक कि मात्रा प्राकृतिक रूप से बढ़ाई गई है। इनमें मुख्यतः प्रजातियां CSH14, CSH1SR, CSH16 & CSH18 है। संकर किस्मों कि मदद से विभिन्नि बीमारियों जैसे मृदल—असिता (डाउनी—मिलड्यू) झोंका (ब्लास्ट), रतुआ (रस्टक) के प्रतिरोधी गुण के लिए विकसित कि गई है जैसे KBH108, GHB905, Nandi 72, 86,89 MPMH 17 भारत में बाजरा उत्पा्दन क्षेत्र का कुल 58% राजस्थान में है, जिसकी हिस्सेदारी कुल उत्पादन कि 44 प्रतिशत है। राजस्थान के अलावा उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र में भी बाजरा का उत्पादन प्रचलित है।

बाजरा में प्रमुख अनाज कि खेती जैसे गेहूं, चावल और ज्वार कि अपेक्षा उच्चतर प्रोटीन (14%), वसा (5.7%) रेशम (12%) और खनिज पदार्थ (2.1%) पाये जाते हैं चूंकि बाजरा असतृप्त वसा अमलों में प्रचुर है, अपितु इसके पाचन के पश्चात शरीर को अधिक ऊर्जा (ज्वार कि तुलना में अधिक और मुरे चावल के समकक्ष) मिल पाती है।

हालांकि बाजरा मानव भोजन के लिए उपयुक्त् है, किंतु इसका उपयोग पशुओं के चारे में भी किया जाता है । इसी के साथ इस पौधे के अन्य भागों का उपयोग सूखे घास, मकान बनाने कि सामग्री और इंधन के स्रोत के रूप में किया जाता है। बाजरे का उपभोग कई प्रकार से किया जाता है,जैसे दलिया, रोटी, किण्विजत और अकिण्वित पेय, स्नैधक्स, फुले, दाना आदि।

बाजरा में पोषण गुणवत्ता होने के बावजूद कुछ प्रतिपोषक तत्व (काइटेट, टेनिन एवं पॉलीकिनॉल) भी पाए जाते हैं। इन कारकों की उपस्थिति से जठतंत्र प्रणाली में आहार के खनिज पदार्थों को समायोजित करते हैं जिससे इनकी जैव सुगमता और जैव उपलब्धता कम हो जाती हैं। बाजरे में काइटिक अम्ल की मात्रा 588 मिली ग्राम से 1382 मिली ग्राम प्रति 100 ग्राम की गई है। काइटिक अम्ल की मात्रा विशेष होने के कारण शरीर खनिज यौगिकों (जिंक, कैलशियम और मैग्निटशियम) के अवश्लेषण बांधा उत्पजन्न (होती हैं किन्तु यह भी पाया गया है कि पकाने एवं प्रसंस्कैरण के

उपरांत इनकी मात्रा काफी कम हो जाती है। इसके अलावा ल्योकटियोलिन नामक क्लो वीलाइट थायराइट हार्मोन के बनने में रूकावट डालता है। किन्तु यह यौगिक पकाने पर निष्क्रीय हो जाता है। वैसे भी सेवन–दर पर इन प्रतिपोषक तत्वों की मात्रा काफी कम हो जाती है। प्रसंस्करण का प्रतिपोषक तत्वों पर प्रभाव तालिका में दिया गया है।

जैव सक्रिय यौगिकसंपूर्ण बाजरा एवं इसकी चोकर फिनोलिक यौगिकों के धनी हैं एवं प्राकृतिक प्रति ऑक्सीयकारकों का स्रोत हैं। विभिन्नि शोधों में ये यौगिक ऑक्सीजनक तनाव से संबंधित असंक्रामक रोगों की रोकथाम के लिए सक्षम पाए गए हैं। बाजरों में सिनामिक अत्य यों के यौगिक मुख्यतः फिनोलिक गतिविधि के कारक हैं। बाजरे में ज्वार, राई, जौ, गेहूं व मक्का से कहीं अधिक फिनोलिक अम्ल पाए जाते हैं ये फिनोलिक अव्यंय अधिकतर चोकर में होते हैं इसलिए संपूर्ण दाने का सेवन स्वास्थ्य के लिए सुझावित हैं।

बाजरे में प्रचुर मात्रा में प्रोटीन की उच्च गुणवत्ता पायी जाती है। इनमें गुल्टा मीक अम्ल (23 ग्राम/100 ग्राम प्रोटीन) होता है। जो कि गाबा नामक न्यू रोटांसमीटर का अग्रणी स्त्रोत है। बाजरे की प्रोटीन में आवश्याक अमीनों अम्लो ल्यूनसीन व आईसो–ल्यूणसीन गेहूं, चावल एवं जई की अपेक्षा अधिक होते हैं। किन्तुं मिशीयोनीन इसमें अल्प् मात्रा में पाया जाता है। बाजरे में खनिज पदार्थों की बात करे तो फॉस्फोरस, पोटेशियम एवं मैग्नीशियम प्रचुर मात्रा में होते हैं। किन्तु कैल्शियम, लौह (18 मिली ग्राम/किलोग्राम शुष्का आहार) एवं जस्ता (45 मिलीग्राम/कि.ग्रा.) की मात्रा कम होती है। लौह और जस्ता की मात्रा को प्राकृतिक रूप से बढ़ाए जाने के लिए कई अनुसंधान किए जा रहे हैं।

बाजरे में वसा की मात्रा अधिक होती है क्योंकि इसमें संपूर्ण दाने का 21 प्रतिशत जीवाणु होता है चुंकि अधिक मात्रा में वसा एवं मुख्यतः असंतृप्त वसा होने के कारण बाजरे का आटा कड़वा हो जाता है जो कि वसा के ऑक्सीकरण के कारण होता है। बाजरे में वसा की मात्रा अन्यो अनाजों की अपेक्षा अधिक होती हैं। जैसे ज्वार एवं मक्का से दुगुना किन्तु जई से कम होता है।

असंक्रमणीय बीमारियों से लड़ने की क्षमता : बाजरा मधुमेह रोग की जटिलताओं को घटाने में सक्षम पाया गया है। बाजरे में धीमी गति से पचने वाली मांड अधिक होती है जो कि अमाइलोज, दानेदार संरचना एवं वसा अम्लोंल के प्रकार के अनोखे समिश्रण एवं परस्पर क्रियाओं के कारण हैं। इसके अलावा विभिन्नन पादप रसायन (किलोलिक अम्ल, ब्लेरवोनाइड एवं नाइट्रेट) पाचन–तंत्र के एंजाइम जैसे–एमाइलोज एवं ग्लूकोसाइडोज जो कि मांड से खंडसार का निर्माण करते हैं एवं मर्ध निष्क्रिय कर पाते हैं।

बाजरे में उपस्थित किनोलिक अम्लक ट्यूमर कोशिकाओं (कैंसर के कारक) की कम करने में सक्षम पाए गए हैं। बाजरे के रेशों से पाचन–तंत्र में लाभकारी बैक्टिरिया की जनसंख्या में वृद्धि दर्ज की गयी है। ये रेशे भोजन के किण्वान के दौरान लघु–श्रृंखला, वसा अम्लय को भी बढ़ाते हैं, जिससे रोग–प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।

बाजरे के उत्पाद

अफ्रीका एवं भारत में पारंपरिक तौर पर बाजरे के कई व्यंजन बनाए जाते हैं। जैसे कि दलिया, रोटी, मिठाई, सत्तुढ, मदिरा पेय पदार्थ। नाईजीरिया में कुरा नामक लड्डू खमीरे व भुने हुए बाजरे से बनाया जाता है जो कि पानी या दही के साथ मिलाकर शौक से खाते हैं।

दलिया मोटे–कुटे बाजरे को नमकिन दलिया और दुध के साथ मीठे दलिये कि तरह खाया जाता है। खिचड़ी में भी दाल, चावल व सब्जियों के साथ बाजरे को मिलाकर, स्वादिष्ट खिचड़ी भी तैयार की जाती है।

बाजरे की रोटी राजस्थान में काफी प्रचलित है। बाकि प्रांतों में बाजरे के लड्डू सत्तु भी बनाये जाते हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिक कई वर्षों से बाजरे की नवीनतम उत्पाद विकसित व प्रचलित कर रहे हैं। जिसमें विस्कुट, पाश्ता, कुल्ले उत्पाद आदि प्रमुख है।

अधिक जानकारी के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् (ICAR) के अखिल भारतीय समन्वित बाजरा अनुसंधान परियोजना, जोधपुर (राजस्थान) के वेबसाइट (www.aicpmip.res.in) पर देख सकते है।

तालिका 1: मोटे अनाजों का पारम्परिक अनाजों की तुलना में पौष्टिक स्तर

(प्रति 100 ग्राम)

अनाज	कार्बोहायड्रेट (ग्राम)	प्रोटीन	वसा	ऊर्जा (किलो कैलोरी)	रेशा (ग्राम)	कैल्शियम (मि.ग्रा.)	फास्फरोस (मि.ग्रा.)	मैग्नीशियम (मि.ग्रा.)	जिंक (मि.ग्रा.)	लौह (मि.ग्रा.)	थाइमीन (मि.ग्रा.)	नियासिन (मि.ग्रा.)	फोलिकएसिड (माइक्रोग्राम)
बाजरा	61.8	10.9	5.43	347	11.5	27.4	289	124	2.7	6.4	0.25	0.9	36.1

तालिका 2: प्रसंस्करण का प्रतिपोषक तत्वों पर प्रभाव

प्रक्रिया	**प्रभाव**
छीलना / छिलका उतारना	• प्रतिऑक्सीकारक क्षमता में कमी • रेशे, खनिज पदार्थों में कमी • फाइटिक अम्ल एवं फिनोलिक यौगिकों में कमी • अविलयरेशों, एमिनो अम्ल और वसा में कमी • मांड और प्रोटीन की पच्यता में बढ़त
भूनना	• आवश्यक एमिनो अम्ल में कमी • फाइटिक अम्ल और मुक्तवसा अम्ल में कमी • जैव –सुलभ फिनॉल में बढ़त
अम्लीकरण	• जैवसुलभ लौह में बढ़त • मुक्त वसा अम्ल में कमी • रंगत में बदलाव
गर्मपानीउपचार	• मुक्तवसा अम्ल में कमी • बासीपन से बचाव • भण्डारण आयु में बढ़त • जैव –सुलभ लौह में बढ़त
उत्कृष्तिकरण	• प्रतिऑक्सीकारक क्षमता में कमी • प्रतिपोषककारकों में कमी • प्रोटीन की पाच्यता में बढ़त
फुल्लेबनाना	• मांड की पच्यता में बढ़त
अंकुरिकरण	• फेनोलिक यौगिकों में कमी • प्रतिपोषककारकों में कमी • प्रोटीन की पच्यता में बढ़त • मुक्त एमिनो अम्ल में बढ़त • आवश्यक एमिनो अम्ल की मात्रा में बढ़त • खनिज लवणों में बढ़त
किण्वीकरण (खमीरा)	• उत्पाद की अम्लता में बढ़त • फाइटिक अम्ल में कमी • फेनोलिक यौगिकों में कमी • जैव सक्रिय यौगिकों में बढ़त • प्रोटीन की पच्यता में बढ़त • खनिज लवणों एवं एमिनो अम्ल में बढ़त

व्यवसायिक खेती के लिये फूलों की नवीन किस्में

एस.एस. सिंधु, एम. के. सिहं एवं नमिता
पुष्प विज्ञान एवं भूदृष्य निर्माण संभाग
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

फूलों का प्रयोग जन्म से लेकर मनुष्य के अंतिम समय तक एवं किसी भी उत्सव में होता रहा है। पुराने समय में फूलों को घर आँगन में उगाकर धार्मिक उपयोग के लिए ही किया जाता था परन्तु आज फूलों का उद्योग एक वाणिज्यिक स्तर पर उभर कर आया है। भारतवर्ष में जलवायु की विविधता होने के कारण अनेकों प्रकार के फूल उगाये जाते हैं तथा दूसरे देशों में निर्यात भी किये जाते हैं। पुष्प उत्पादन एक बहुत ही लाभकारी व्यवसाय है क्योंकि इससे प्रति यूनिट क्षेत्र से दूसरी अनाज की फसलों की अपेक्षा अधिक आय मिलती है। भारत में फूलों का अर्थव्यवस्था पर एक महत्वपूर्ण योगदान है। फूलों की श्रेणी में अनेक फूल जैसे कि ग्लेडियोलस, गुलदाऊदी, चमेली, रजनीगंधा, क्रोसेण्डरा, वारलेरिया, गेंदा, गुलाब, इत्यादि शामिल हैं।

फूलों की उत्पादन तकनीक एवं नवीन किस्मों के विकास में भा.कृ.अनु.सं. –भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान की सराहनीय योगदान रहा है। इस लेख में इस संस्थान द्वारा तैयार की गई फूलों की नवीन किस्मों का वर्णन किया गया हैं।

1. गुलाबः गुलाब एक महत्वपूर्ण बहुवर्षीय पौधा है, जो प्राचीन समय से दुनियां के कई देशों में उगाया जाता है। इसे कर्तित पुष्पों को गुलदस्तों तथा फूलदान के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसके साथ ही, इसे झाड़ी के रूप में, स्टैण्डर्ड, लताओं, किनारों पर तथा रॉक गार्डन में भी उपयोग किया जाता है। गुलाब की तैयार की गई नवीन किस्म का विवरण इस प्रकार से है।

पूसा महकः इस किस्म का विमोचन वर्ष 2017 में किया गया है। इसका प्रवर्धन टी बडिंग द्वारा जनवरी–फरवरी महीने में किया जाता है। उत्तरी भारत के मैदानी क्षेत्रों में पौधे लगाने का उपयुक्त समय अक्टूबर का दूसरा पखवाड़ा है। बलुअर दोमट भूमि के खुले खेत में इसकी खेती करके अच्छी पुष्प पैदावार ली जा सकती है। यह किस्म 50–60 फूल प्रति पौधा, फूल उत्पादित करती है। पूसा महक एक हाइब्रिड टी श्रेणी की गुलाब की प्रजाति है। इसके पौधे लम्बे (100–120 सें.मी.) तथा जोरदार वृद्धि वाले होते हैं। इसके गहरे गुलाबी रंग के पुष्प अत्यधिक खुशबू वाले तथा बड़े आकार के होते हैं। इसके पौधे कटाई–छंटाई के 40–45 दिन बाद फूल देना शुरू कर देते हैं। यह किस्म साल में कई बार फूल देती है। सुगन्धित फूलों के कारण यह प्रजाति उद्यानों में उगाने के लिए अति उपयुक्त है तथा प्रभावी सुगंध के कारण इसके फूलों की महत्वता, पुष्प सज्जा हेतु भी बढ़ जाती है।

2. ग्लेडियोलसः यह एक शाकीय पौधा है जिसको कॉर्मस (कन्दों) के द्वारा उगाया जाता है। इसका कन्द 4–6 शल्कों से ढका होता है। ये 10–15 दिनों में अंकुरित हो जाते है। इसकी पत्तियां तलवार के आकार की होती हैं जो तने से गुच्छे के रुप में निकलती हैं। इसका फूल बड़ा तथा कीप के आकार का होता है। ग्लेडियोलस की तैयार की गई नवीन किस्मों का वर्णन इस प्रकार से है।

पूसा सृजनाः यह वर्ष 2015 में विमोचित की गई है। यह किस्म उत्तरी मैदानी क्षेत्रों में उगाने हेतू उपयुक्त है। बलुअर दोमट मिट्टी जो कार्बनिक पदार्थ से भरपूर हो जिसमे पानी धारण करने की क्षमता हो, पानी निकालने की सुविधा भी हो तथा जिस का पी.एच. 6–7 हो, ग्लेडियोलस की खेती के लिए अच्छी होती है। उत्तरी भारत में इसके बोने का उचित समय अक्टूबर का प्रथम सप्ताह अच्छा रहता है। यह प्रजाति 1.00–1.20 लाख कार्मस (कन्द) तथा उतने ही स्पाईक प्रति एकड़ पैदा करती हैं। यह प्रजाति 85 से.मी. से अधिक लम्बी स्पाईक, जिस पर 15–17

संख्या में फ्लोरेट्स लगे रहते हैं, पैदा करती है। स्पाईक की साधारण वेस लाइफ 9 दिन तक होती है। रेचिस की लम्बाई 49 से.मी. से अधिक तथा प्रति पौधा कार्मस 3.10 तथा कार्मेल्स की संख्या 27.44 तक मिल जाती है। यह एक अगेती किस्म है जो 74 दिन में फूल देने लगती है। इस किस्म की फ्लोरेट्स का आकर्षित बैंगनी रंग है। यह प्रजाति गार्डन में लगाने, गृह वाटिका तथा भूदृष्य के लिए बहुत ही उपयुक्त है।

पूसा उन्नतिः यह किस्म भी वर्ष 2015 में विमोचित की गई है। यह उत्तरी मैदानी क्षेत्रों में उगाने के लिए उपयुक्त है। बलुअर दोमट मिट्टी जो कार्बनिक पदार्थ से भरपूर हो जिसमे पानी धारण करने की क्षमता, पानी निकालने की सुविधा एवं पी. एच. 6–7 हो, ग्लेडियोलस की खेती के लिए अच्छी होती है। उत्तरी भारत में इसके बोने का उचित समय अक्टूबर का प्रथम सप्ताह अच्छा रहता है। यह प्रजाति 1.00–1.10 लाख स्पाईक तथा उतने ही कार्मस प्रति एकड़ पैदा करती हैं। यह प्रजाति 115 से.मी. से अधिक लम्बी स्पाईक जिस पर 16–20 संख्या में फ्लोरेट्स लगे होते हैं तथा स्पाइक की साधारण वेस लाइफ 9 दिन से अधिक होती हैं। रेचिस की लम्बाई 56 से.मी. से अधिक तथा प्रति पौधा कार्मस (कन्दों) की संख्या 2.88 तथा कार्मेल्स 49.78 तक मिल जाती है। यह प्रजाति मध्यम से पिछेती है जो 107 दिन में फूल देती हैं। फूल का रंग लालिमा समूह का बैगनी, अंदर के दोपत्र गहरे पिंक तथा केंद्र में सफेद रंग की पट्टी होती है। पत्तियां चौड़ी व लम्बी तथा एकदम सीधी होती हैं। इसके कर्तित फूल बूके या पुष्प गुच्छा बनाने में प्रयोग करने के लिए उपयुक्त हैं।

पूसा सिंदूरीः यह किस्म वर्ष 2017 में विमोचित की गई है। यह उत्तरी मैदानी क्षेत्रों में उगाने के लिए उपयुक्त हैं। बलुअर दोमट मिट्टी जो कार्बनिक पदार्थ से भरपूर हो जिसमे पानी धारण करने की क्षमता, पानी निकालने की सुविधा, जिसका पी. एच. 6–7 हो, ग्लेडियोलस की खेती के लिए अच्छी होती है। उत्तरी भारत में इसके बोने का उचित समय अक्टूबर का प्रथम सप्ताह अच्छा रहता है। यह प्रजाति प्रति एकड़ 1.00–1.20 लाख कार्मस तथा उतने ही स्पाईक पैदा करती है। फ्लोरेट के आधार पर चमकीला सिंदूरी लाल रंग होता हैं जिसके अंदर वाले दोनों पंखुड़ियों के आधार पर दो पीले रंग के चाँद जैसे स्पॉट होते हैं तथा थ्रोट पर धनुष जैसी आकर की पट्टी होती है जो बहुत आकर्षित लगती हैं। यह एक मध्यम समय में 105. 22 दिन में कम्पेक्ट फ्लोरेट्स के साथ स्पाईक पैदा करती हैं। स्पाइक की लम्बाई 98.77 से.मी. से अधिक तथा रेचिस की लम्बाई भी 52 सेमी से अधिक जिस पर फ्लोरेट्स की संख्या 18.66 तक लगे होते हैं। इसके कर्तित फूल, वेस सजावट, बूके बनाने तथा विभिन्न जापानी सजावटों में प्रयोग किये जा सकते हैं।

3. गेंदाः गेंदा खुले फूलों हेतू उगाई जाने वाली फसलों में से एक मुख्य फसल है। इसे सजावटी पौधे के रुप में उद्यानों की क्यारियों तथा गमलों में उगाया जाता है। इसके ताजे फूल माला बनाने, पूजा करने तथा अन्य धार्मिक अवसरों में प्रयोग किये जाते हैं।

पूसा दीपः इस किस्म को वर्ष 2017 में विमोचित किया गया। यह किस्म भारत के उत्तरी मैदानी क्षेत्रों में उगाने के लिए उपयुक्त है। इसका प्रवर्धन बीज द्वारा किया जाता है। उत्तरी भारत के मैदानी क्षेत्रो में इसकी बिजाई का उपयुक्त समय जुलाई का प्रथम पखवाड़ा है। बलुअर दोमट भूमि में खुले खेत में इसकी खेती करके अच्छी पुष्प पैदावार ली जा सकती है। यह प्रचुर मात्रा में फूल देने वाली प्रजाति है, जिसमें प्रति हेक्टेयर खुले फूलों की पैदावार 18 से 20 टन तक होती है। यह फ्रांसीसी गेंदा वर्ग की शीघ्र फूल देने वाली प्रजाति है जो कि बीजाई के 85 से 95 दिन बाद फूल देना शुरू कर देती है। इस प्रजाति के पौधे मध्यम आकार के 55 से 65 सें.मी. ऊंचाई वाले होते हैं, जिनका फैलाव 50 से 55 सें.मी. होता है। इसके फूल सुगठित, मध्यम आकार वाले एवं गहरे लाल रंग के होते हैं। उत्तरी भारत के मैदानी क्षेत्रों में इस प्रजाति के पुष्पन का मुख्य समय अक्टूबर–नवम्बर होता है। त्यौहारों के समय में पुष्पन के कारण यह प्रजाति खुले फूलों की खेती हेतु काफी उपयुक्त है, क्योंकि इस समय बाजार में फूलों की ज्यादा मांग होने के कारण उत्पादकों को ज्यादा आमदनी होती है।

पूसा बहारः इस किस्म का जारी करने का वर्ष 2017 है।

यह उत्तरी मैदानी क्षेत्रों में उगाने हेतू उपयुक्त है। इसका प्रवर्धन बीज द्वारा किया जाता है। उत्तरी भारत के मैदानी क्षेत्रों में इसकी बिजाई का उपयुक्त समय अक्टूबर का दूसरा पखवाड़ा है। बलुअर दोमट भूमि में खुले खेत में इसकी खेती करके अच्छी पुष्प पैदावार ली जा सकती है। यह प्रचुर मात्रा में फूल देने वाली प्रजाति है, जिसमें प्रति हेक्टेयर खुले फूलों की पैदावार 25 से 30 टन तक होती है। यह अफ्रीकी गेंदा वर्ग की प्रजाति है जो कि बीजाई के 90 से 100 दिन बाद फूल देना शुरू करती है। इसके पौधे जोरदार वद्धि तथा 75 से 85 से.मी. ऊंचाई वाले होते है। इसके पुष्प सुगठित, चपटे, आकर्षक व बड़े आकार वाले पीले रंग के होते है तथा इसमें पंखुड़ियों की मात्रा भी अधिक होती है। यह प्रजाति मध्य जनवरी से मार्च तक पुष्पन करती है। यह प्रजाति उदयानो में उगाने एवं पुष्प सज्जा हेतु उपयुक्त है।

3.गुलदाउदीः यह भारतवर्ष में उगाने वाला महत्वपूर्ण फूल है। इसे क्यारियों एवं गमलों में उगाया जा सकता है। बड़े फूलों के आकार वाली प्रजातियों का उपयोग कर्तित फूलों के रूप में एवं प्रदर्शनी हेतू किया जाता है। जबकि छोटे आकार वाली प्रजातियों को कर्तित फूल, माला, गजरा, वेणी, पूजा तथा गमलों एवं क्यारियों के उद्देश्य से उगाया जाता है। इसकी नवीन किस्में निम्न प्रकार से हैं।

पूसा गुलदस्ताः इस किस्म का विमोचन वर्ष 2017 में किया गया है। इसका प्रवर्धन शीर्ण कलिकाओं द्वारा किया जाता है। उत्तरी भारत के मैदानी क्षेत्रों में इसको लगाने का उपयुक्त समय जुलाई–अगस्त है। बलुअर दोमट भूमि के खुले खेत में इसकी खेती करके अच्छी पुष्प पैदावार ली जा सकती है। यह लगभग 240 फूल प्रति पौधा, फूल उत्पादित करती है। इस किस्म के पौधे लगभग 58 सेंटी मीटर ऊंचाई व 50 सेंटी मीटर फैलाव लेते हैं। इस किस्म के फूल की बाहरी पंखुड़ियाँ नारंगी लाल रंग की व मध्य भाग (डिस्क) की पंखुड़ियाँ पीले रंग की होती हैं। फूल की चौड़ाई लगभग 3.8 सेंटी मीटर होती हैं व पुष्प विन्यास कोरिम्ब प्रकार का होता हैं जिसके फूल लगभग 48 दिनों तक खिले रहते हैं। इस किस्म के पौधों की वृद्धि सीधी होती हैं व मजबूत शाखायें नीचे की तरफ नहीं झुकती हैं। इसलिए इस किस्म के पौधों को सहारे की व शीर्ण कलिका के तुड़ाव (पिंचिंग) की आवश्यकता नहीं होती हैं। यह किस्म स्प्रे व गमलों में उगाने के लिए उपयुक्त है।

पूसा श्वेतः इसका विमोचन भी वर्ष 2017 में हुआ है। इसका प्रवर्धन शीर्ण कलिकाओं द्वारा किया जाता है। उत्तरी भारत के मैदानी क्षेत्रो में इसको लगाने का उपयुक्त समय जुलाई–अगस्त है। बलुअर दोमट भूमि के खुले खेत में इसकी खेती करके अच्छी पुष्प पैदावार ली जा सकती है। यह लगभग 110 फूल प्रति पौधा, फूल उत्पादित करती है। इस किस्म के पौधे लगभग 41 सेंटी मीटर ऊंचाई व 48 सेंटी मीटर फैलाव लेते हैं। मध्यम फैलाव के पौधों पर फूलों की बाहरी पंखुड़ियाँ सफेद एवं मध्य भाग (डिस्क) पीले रंग की होती हैं। खुले खेतों में सामान्यतः पुष्प 40 दिनों तक खिले रहते हैं। पूर्ण पुष्पन की अवस्था में इस किस्म के सफेद फूल बर्फ की चादर का सुन्दर आभास कराते हैं। यह किस्म उद्यानों में सजावट व गमलों में उगाने के लिए उपयुक्त हैं।

पौधों में आवश्यक पोषक तत्वों के कार्य, कमी के लक्षण एवं कमी को दूर करने के उपाय

विनोद कुमार शर्मा, कपिल आत्माराम चोभे एवं मंदिरा बर्मन
मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विज्ञान संभाग,
भा.कृ.अन.प. – भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110 012

पौधों की वृद्धि एवं फसल उत्पादन में पोषक तत्वों का अहम् योगदान है जिनकी, पौधों की वृद्धि, प्रजनन, तथा विभिन्न जैविक क्रियाओं के लिए आवश्यकता होती है। इन पोषक तत्वों के उपलब्ध न होने पर पौधों की वृद्धि रूक जाती है यदि ये पोषक तत्व एक निश्चित समय तक न मिलें तो पौधों की मृत्यु भी हो जाती है। इसीलिए पौधे अपनी वृद्धि के लिए मृदा, जल तथा वायु से कई तत्वों का शोषण करते हैं। लेकिन सभी शोषित तत्व पौधों के पोषण में भाग नहीं लेते है जो तत्व पौधों के पोषण में भाग लेते हैं उन्हें पोषक तत्व कहते हैं । इन पोषक तत्वों की अनुपस्थिति में पौधे अपना जीवनचक्र को सफलतापूर्वक पूर्ण नहीं कर सकते, इसीलिए इन्हें आवश्यक पोषक तत्व कहते हैं।

पौधों द्वारा मुख्य पोषक तत्वों के साथ–साथ गौण एवं सूक्ष्म पोषक तत्व को भी गृहण करते हैं जिसके कारणवश मृदा में इन तत्वों की उपलब्धता में भी प्रायः कमी आ जाती है। मृदा में इन आवश्यक पोषक तत्वों की की अत्यधिक कमी के कारण पौधों में इनकी कमी के लक्ष्ण दिखाई देने लगते है जिनकी आपूर्ति उर्वरकों, कार्बनिक खादों तथा जैव खादों के प्रयोग से की जाती है। विभिन्न मृदाओं में मृदा के स्वरूप, उर्वरकों एवं खादों के प्रयोग के अनुसार उपलब्ध पोषक तत्वों की भिन्न भिन्न मात्रा होती है जिसका निर्धारण मृदा परीक्षण द्वारा किया जाता है मृदा परीक्षण संतुलित, आर्थिक दृष्टि से उपयोगी तथा पौधों की आवश्यकताओं के अनुरूप उर्वरकों एवं खादों की मात्रा एवं अनुपात के निर्धारण के लिए अत्यंत उपयोगी है।

पादप पोषण में तत्वों की अनिवार्यताः

वैज्ञानिक आरनोन के अनुसार आवश्यक पोषक तत्व वह हैं–

1. जिनकी कमी के कारण पौधे अपने जीवनचक्र पूरा नहीं कर सकते है।
2. किसी विशेष आवश्यक तत्व की कमी को केवल उसी तत्व को मृदा में मिलाकर या पर्णीय छिड़काव के द्वारा ही दूर किया जा सकता है या कह सकते है कि एक आवश्यक पोषक तत्व की कमी को दूसरे तत्व से पूरा नहीं किया जा सकता है।
3. पौधों के पोषण में सीधे संनिहित होता है।

आवश्यक पोषक तत्वः

पौधों की आवश्यकतानुसार पोषक तत्वों को निम्न लिखित वर्गों में रखा गया है जैसेः

- **मुख्य पोषक तत्वः** नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश– पौधों को इनकी अधिक आवश्यकता होती है इसीलिए इन्हें मुख्य पोषक तत्व कहते हैं।
- **गौण पोषक तत्वः** कैल्सियम, मैग्नीशियम एवं सल्फर– ये भी पौधों को पर्याप्त मात्रा में चाहिए, लेकिन इनका कार्य मुख्य पोषक तत्वों से कम होता है।
- **सूक्ष्म पोषक तत्वः** लोहा, जिंक, कॉपर, मैग्नीज, बोरोन एवं मालिब्डेनम इत्यादि– पौधों को इन पोषक तवों की केवल सूक्ष्म मात्रा में आवश्यकता होती है।

आवश्यक पोषक तत्वों के पौधों में कार्य व कमी के लक्षणः–

मुख्य पोषक तत्वः

नाइट्रोजन के कार्य :

- नाइट्रोजन, पौधों में प्रोटीन निर्माण के लिए आवश्यक है, जो जीव द्रव्य का अभिन्न अंग है साथ ही पर्ण हरित के निर्माण में भी भाग लेता है। नाइट्रोजन का पौधों की वृद्धि एवं विकास में योगदान इस तरह से हैः

- न्यूक्लिक अम्ल, एमीनो अम्ल, क्लोरोफिल, हारमोंस, प्रोटीन, एमाइड्स तथा प्रोटोप्लाज्मा की संरचना में सक्रिय भाग लेता है।
- यह एडिनोसिन ट्राईफॉस्फेट (जो एक श्वसन ऊर्जावाहक है) का एक अवयव है ।
- नाइट्रोजन से स्टार्च के जल विश्लेषण में तथा विभिन्न प्रकार की शर्कराओं के कार्बनिक अम्लों में परिवर्तन होने में मदद करता है।
- पौधों में नाइट्रोजन नियंत्रक का काम करता है , इससे फॉस्फोरस व पोटेशियम का विनिमय भी संतुलित रहता है।
- यह पादप ऊतकों में पानी का अनुपात बढाता है तथा कैल्शियम की प्रतिशतता घटाता है।
- यह पौधों की फॉस्फोरस, पोटेशियम और कैल्शियम को शोषित करने की क्षमता को बढाता है।

नाइट्रोजन की कमी के लक्षणः

- पौधों मे प्रोटीन की कमी होना व हल्के रंग का दिखाई पड़ना। निचली पत्तियाँ पीली पड़ने लगती है।
- पौधे की बढ़वार का रूकना, कल्ले कम बनना, फूलों का कम आना।
- फल वाले वृक्षों का गिरना। पौधों का बौना दिखाई पड़ना। फसल का जल्दी पक जाना।

फॉस्फोरस के कार्यः

- यह फॉस्फोप्रोटीन,फाइटिन, फॉस्फोलिपाइड्स तथा न्यूक्लिक अम्ल के निर्माण एवं प्रकाश संश्लेषण में सहायक है जो कोषा विभाजन को प्रभावित करता है का एक अवयव है।
- यह नाइट्रोजन के हानिकारक प्रभाव को कम या उदासीन करता है।
- पौधों के पार्श्व रेशेदार जड़ों के निर्माण में सहायक होता है जो पोषकों के अवशोषण के लिए प्रष्ठीय क्षेत्र को बढाता है।
- फलीदार फसलों की जड़ों में स्थिति ग्रंथियों की संख्या एवं आकार में वृद्धि करता है। जिसके फलस्वरूप अधिक वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण होता है।
- इससे फूल शीघ्र बनते हैं व दाने/बीज बनाने में सहायता करता है तथा फसल को शीघ्र पकता है।

फॉस्फोरस की कमी के लक्ष्णः

- पौधे छोटे रह जाते हैं, पत्तियों का रंग हल्का बैगनी या भूरा हो जाता है।
- फॉस्फोरस गतिशील होने के कारण पहले कमी के लक्षण पुरानी (निचली) पत्तियों पर दिखते हैं।
- दलहनी फसलों में पत्तियां का रंग नीला हरा हो जाता हैं।
- पौधो की जड़ों की वृद्धि व विकास बहुत कम होता है कभी–कभी जड़े सूख भी जाती हैं।
- अधिक कमी में तने का गहरा पीला पड़ना, फल व बीज का निर्माण सही न होना।
- इसकी कमी से आलू की पत्तियाँ प्याले के आकार की, दलहनी फसलों की पत्तियाँ नीले रंग की तथा चौड़ी पत्ती वाले पौधे में पत्तियों का आकार छोटा रह जाता है।

पोटेशियम के कार्यः

- यह उत्प्रेरक का कार्य करता है पौधों के दैहिक कार्यों के लिए आवश्यक है।
- कार्बोहाइड्रेट के स्थानांतरण, प्रोटीन संश्लेषण में संलग्न एन्जाइम्स की सक्रियता बढाने एक महत्त्वपूर्ण कारक है।
- पोटेशियम पौधों में प्रोटीन के निर्माण में सहायक है वपत्तियों में शर्करा व स्टार्च के निर्माण में भी वृद्धि करता है।
- पौधो की उपापचय सक्रियता से उत्पन्न कार्बनिक अम्लों को उदासीन करता है।
- पोटेशियम अधिक चल होता है अतः नई विभज्योतकों में सामान्य कोशिका विभाजन को बढाता है।

- नाइट्रोजन व फॉस्फोरस से दाने पर होने वाले कुप्रभाव को दूर करता है।
- पौधों की रोग प्रतिरोधी क्षमता में वृद्धि होती है।

पोटेशियम की कमी के लक्षणः

- पत्तियाँ भूरी व धब्बेदार हो जाती हैं तथा समय से पहले गिर जाती हैं।
- पत्तियों के किनारे व सिरे झुलसे दिखाई पड़ते हैं।
- इसी कमी से मक्का के भुट्टे छोटे, नुकीले तथा किनारोंपर दाने कम पड़ते हैं। आलू में कन्द छोटे तथा जड़ों का विकास कम हो जाता है
- पौधों में प्रकाश–संश्लेषण की क्रिया कम तथा श्वसन की क्रिया अधिक होती है।

मृदा में पोषक तत्वों की कमी को दूर करने के उपाय एवं छिड़काव के द्वारा पौधों में कमी को दूर करना

पोषक तत्व	मृदा में उपलब्धता की निर्णायक सीमा	पोषक तत्वों की मात्रा (किलो.ग्रा./है.)	उर्वरक का नाम एवं प्रयोग
नत्रजन	उपलब्ध नत्रजन 280 किलोग्राम प्रति है.	विभिन्न फसलों की संस्तुति के अनुसार	यूरिया की 1/3 मात्रा का उपयोग बुबाई के समय एवं यूरिया की 2/3 मात्रा दो से तीन बार में फसल बढवार के समय (कल्ले बनते समय, बाली निकलते समय तथा दाने बनते समय
		10 किलो. ग्रा. प्रति 500 लीटर पानी प्रति है.	2.0 प्रतिशत यूरिया विलयन का पर्णीय छिड़काव
फॉस्फोरस	उपलब्ध फॉस्फोरस 10 किलोग्राम प्रति है.	विभिन्न फसलों की संस्तुति के अनुसार	डाई अमोनियम फॉस्फेट (डी.ए.पी.) या सिंगल सुपर फॉस्फेट (एस.एस.पी) या नाइट्रो–फॉस्फेट का उपयोग केवल बुबाई के समय करना चाहिए
पोटेशियम	उपलब्ध पोटेशियम 120 किलोग्राम प्रति है.	विभिन्न फसलों की संस्तुति के अनुसार	1.0 प्रतिशत म्यूरेट आफ पोटाश विलयन का पर्णीय छिड़काव
सल्फर	उपलब्ध सल्फर 10 मिली. ग्रा./कि.ग्रा.	25 किलो ग्राम सल्फर प्रति है. मध्यम गठन वाली मृदा के लिए तथा भारी गठन वाली मृदा में 50 किलो ग्राम सल्फर प्रति है. का उपयोग	150–200 किलो ग्राम जिप्सम प्रति है. साथ ही सिंचाई करना आवश्यक है
लोहा'	4.5 मिली.ग्रा./कि.ग्रा. (डी. टी.पी.ए. निष्कर्षित)	50–100 किलो. ग्रा. प्रति है.	फैरस सल्फेट का मृदा में उपयोग
		5–15 किलो. ग्रा. प्रति 500 लीटर पानी प्रति है.	1–3 प्रतिशत फैरस सल्फेट. 0.5 प्रतिशत चूना विलयन के दो से तीन छिड़काव 10 दिन के अंतराल पर
मैंगनीज'	2.0 मिली.ग्रा./कि.ग्रा. (डी. टी.पी.ए. निष्कर्षित)	50 किलो.ग्रा. प्रति है.	मैंगनीज सल्फेट का मृदा में उपयोग
		5 किलो. ग्रा. प्रति 500 लीटर पानी प्रति है.	1.0 प्रतिशत मैंगनीज सल्फेट.0.25 प्रतिशत चूना विलयन के दो से तीन छिड़काव 15 दिन के अंतराल पर
जस्ता	0.6 मिली.ग्रा./कि.ग्रा. (डी. टी.पी.ए. निष्कर्षित)	25 किलो. ग्रा. प्रति है.	मध्यम गठन वाली मृदा में जिंक सल्फेट का मृदा उपयोग दो वर्ष में एक बार
		50 किलो. ग्रा. प्रति है.	भारी गठन वाली मृदा में जिंक सल्फेट का मृदा उपयोग

		2.5 किलो.ग्रा. जिंक सल्फेट. 1.5 किलो.ग्रा. चूना प्रति 500 लीटर पानी प्रति है.	0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट. 0.25 प्रतिशत चूना विलयन के दो से तीन छिड़काव 10 दिन के अंतराल पर (500 लीटर पानी प्रति है.)
तांबा	0.2 मिली.ग्रा./कि.ग्रा. (डी. टी.पी.ए. निष्कर्षित)	4 किलो. ग्रा. प्रति है.	कॉपर सल्फेट का मृदा उपयोग
		0.125 किलो. ग्रा. प्रति 500 लीटर पानी प्रति है.	0.025 प्रतिशत कॉपर सल्फेट. 0.01 प्रतिशत चूना विलयन के दो से तीन छिड़काव 10 दिन के अंतराल पर (500 लीटर पानी प्रति है.)
बोरोन	0.5 मिली.ग्रा./कि.ग्रा. (गर्म जल विलयशील)	10 किलो. ग्रा. प्रति है.	बोरेक्स का मृदा में उपयोग
		1.0 किलो. ग्रा. प्रति 500 लीटर पानी प्रति है.	0.2 प्रतिशत बोरिक एसिड या सोल्यूबार विलयन के दो से तीन पर्णीय छिड़काव
मोलिब्डेनम''	0.2 मिली. ग्रा./कि. ग्रा. (एसिटिक अमोनियम ऑक्जेलिक एसिड निष्कर्षित)	2–3 किलो. ग्रा. प्रति है.	अमोनियम मोलिब्डेट
		1.0 किलो. ग्रा. अमोनियम मोलिब्डेट प्रति 500 लीटर पानी प्रति है.	0.1 – 0.3 प्रतिशत अमोनियम मोलिब्डेट विलयन का दो से तीन छिड़काव 10 दिन के अंतराल पर

* फसल पर छिड़काव मृदा उपयोग की अपेक्षा अधिक लाभकारी होता है।

** बीज उपचार / 50–100 ग्राम मोलिब्डेनम अत्यधिक उपयोगी है।

कृषि में अधिक आय के लिए बटन मशरूम की खेती अपनाएं

रोबिन गोगोई, राम चरण मथुरिया एवं तुषार कांति बाग
पादप रोग विज्ञान संभाग,
भा.कृ.अ.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली – 110 012

भारतवर्ष में किसान मशरूम की खेती सदियों से करते आ रहे हैं। इनके रंग–बिरंगे, सुन्दर फलनकाय सहज ने मनुष्य को आकर्षित किया है। मशरुम एक प्रकार का मांशल कवक है जो अत्यंत स्वादिष्ट एवं पौष्टिक शुद्ध शाकाहार भोजन है। प्रकृति में पाये जाने वाले सभी खुम्ब खाने योग्य नहीं हैं, उनमें से कुछ विषैले भी होते हैं। अभी तक विश्व भर में 1600 से अधिक खुम्ब की किस्में मिल चुकी हैं जिनमें से 100 प्रकार के मशरुम हमारे भोजन में सम्मिलित हो चुके हैं। प्राचीन समय में अशिक्षित लोग ही मशरूम की खेती करते थे। लेकिन बदलते समय ने कृषि में भी शिक्षित लोगों के लिए अवसर पैदा किये हैं इस कवक से घरों से लेकर होटलों तक स्वादिष्ट डिशें तैयार की जाती हैं सामान्य तौर पर सब्जी के तौर पर मशरुम का उपयोग होता है, और चूँकि यह शाकीय पौष्टिक, अधिक प्रोटीन युक्त (20–30 प्रतिशत), बहुत से विटामिन्स, खनिज तत्व जैसे बी– काम्पलेक्स, लोह, तथा लायसिन एवं सम्पूर्ण रूप से कोलेस्ट्रॉल रहित और एंटी ऑक्सीडेंट गुणों के कारण स्वास्थ्य के लिए बेहद लाभकारी होती हैं इसलिए इनकी मांग बाजार में हमेशा रहती है। आज कल खुम्ब की बढ़ती हुई मांग को ध्यान में रखकर मशरुम उगाने का काम मशरूम व्यवसाय के नाम से जाना जाता है।

विभिन्न प्रकार के मशरुम एवं उनकी खेती करने का समय

- सफेद बटन मशरुम (*अगेरिकस बाइस्पोरस*) – मध्य सितम्बर से मध्य मार्च तक
- शिटाके मशरुम (*लैन्टीनूला इडोड़स*) –सितम्बर मध्य से फरवरी
- धान पुआल खुम्ब (*वोल्वेसिया* एवं *डिप्लेसिया*) – मई से मध्य अगस्त
- आयस्टर मशरुम (*प्लूरोटस सजोरकाजु* एवं अन्य प्रजातियाँ) – अगस्त से अप्रैल
- दूधिया मशरुम (*कैलोसाइबी इण्डिका*)–मार्च से मध्य अगस्त

बटन मशरुम की खेती

भारतवर्ष में मशरूम उत्पादन लगभग 160 हजार टन पहुंच गया है जिसमें बटन मशरूम 85 प्रतिशत योगदान के साथ प्रथम स्थान पर है। इसके बाद ऑयस्टर मशरूम और धान पुआल मशरूम आते हैं। बटन मशरूम उत्तर भारत की प्राकृतिक परिस्थितियों में अक्तूबर से मार्च के बीच उगाया जाता है और तीन–तीन महीने की अवधि की दो फसलें प्राप्त कर सकते हैं।

बटन मशरुम के कवक जाल की वृद्धि के लिए 22–25 डिग्री सेल्सियस तापमान सबसे अनुकूल होता है जबकि फलनकाय बनने के लिए अनुकूलतम तापमान 16–18 डिग्री सेल्सियस है तथा 14 डिग्री से. के नीचे तापमान पहुँचने पर कवक जाल (कायिक वृद्धि) और फलनकाय, दोनों का बनना कम हो जाता है। अधिक तापमान से कई तरह के रोगो का प्रकोप हो जाता है। 80 से 85 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता, मशरुम– वृद्धि के लिए आवश्यक है।

अगेरिकस की एक अन्य प्रजाति *अ. बाइटोरक्विस* भी व्यावसायिक रुप से उगायी जाती है। इसकी कायिक वृद्धि के लिए 25–30 डिग्री सेल्सियस तापमान और फलनकाय बनने के लिए 20–25 डिग्री से. तापमान अनुकूलतम है। वैसे उत्तर भारत में बटन मशरुम की खेती के लिए *अ. बाइस्पोरस* की ही सिफारिश की जाती है क्योंकि यह प्रजाति अधिक लोकप्रिय है।

खेती के लिए आवश्यक सामग्री

बटन मशरुम की खेती कृत्रिम रुप से तैयार किए गए कम्पोस्ट पर की जाती है जिसके बनाने की दो विधियाँ हैं – (1) लम्बी विधि (28 दिन) और छोटी विधि (18

दिन) या पाशच्यूराइजेशन विधि। मशरुम की खेती के लिए आवश्यक चीजें इस प्रकार से हैं – मशरुम घर, 100 सें.मी. x 15 सें.मी. आकार की ट्रे अथवा 30 x 45 सें.मी. परिमाप के थेले कम्पोस्ट बनाने के लिए चबूतरा, कम्पोस्ट बनाने की सामग्री, मशरुम स्पान, केसिंग मिट्टी आदि।

मशरुम घर

एक अच्छा मशरुम घर हवादार एवं तापरोधी होना चाहिए ताकि उसके भीतर तापमान और आपेक्षिक आर्द्रता को नियंत्रित रखा जा सके। इसके भीतर 1500–2500 लक्स तीव्रता का प्रकाश, एग्जॉस्ट पंखे और कूलर या एयर कंडीशनर की व्यवस्था होनी चाहिए। इसके भीतर ईंटों या कंक्रीट का बना पक्का फर्स होना चाहिए।

कम्पोस्ट तैयार करना

मशरुम–कम्पोस्ट बनना एक जटिल जैव रसायन प्रक्रिया है। इसमें सेल्यूलोज, हेमी सेल्यूलोज और लिग्निन आंशिक रूप् से सड़ जाते हैं और अकार्बनिक नाइट्रोजन से सूक्ष्मजीवी प्रोटीन का संश्लेषक होता है। कम्पोस्टिंग के दौरान वायवीय परिस्थितियों में जटिल किण्वन प्रक्रिया होती है, जिसमें एक के बाद एक मध्यम तापरागी (मीजोफिलिक) और तापरागी (थर्मोफिलिक) सूक्ष्मजीव भाग लेते हैं। इस कारण से ढेर का भीतरी तापमान 75–80 डिग्री सेल्सियस तक हो जाता है। इस प्रक्रिया में लिग्नोप्रोटीन कॅम्प्लेक्स बनता है जो *अ. बाइस्पोरस* की वृद्धि के लिए अनुकूल परिस्थिति है। नाइट्रोजन–स्रोतों को कम्पोस्ट में मिलाने के कारण कार्बन/नाइट्रोजन अनुपात भी कम हो जाता है ।

कम्पोस्ट सामग्री

- कटा हुआ गेहूँ का भूसा/धान पुआल (10–15 सें.मी. लम्बा)–250 कि.ग्रा.
- गेहूँ/धान का छिलका (चोकर)–20–25 कि.ग्रा.
- अमोनियम सल्फेट/कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट – 4 कि.ग्रा.
- यूरिया – 3 कि.ग्रा.
- म्यूरेट ऑफ पोटाश–4 कि.ग्रा.
- जिप्सम–20 कि.ग्रा.
- मेलाथियान–40 कि.ग्रा.

कम्पोस्ट बनाने के लिए प्रयोग में लाया जाने वाला भूसा एक साल से अधिक पुराना बारिश में भींगा नहीं होना चाहिए। 250 कि.ग्रा. गेहूँ के भूसे के स्थान पर 400 कि. ग्रा. धान पुआल का भी प्रयोग कर सकते हैं। यदि धान का भूसा प्रयोग कर रहे हों तो साथ में 6 किलो बिनौले (कपास का बीज) के आटे का प्रयोग भी करें।

कम्पोस्ट बनाने की विधियाँ

कम्पोस्ट दो विधियों द्वारा तैयार किया जा सकता है – (1) लम्बी विधि (2) छोटी विधि या पाशच्युराइजेशन विधि।

1. लम्बी विधि : कम्पोस्ट बनाने के लिए पक्के चबूतरे पर पर गेहूँ के भूसे (10–15 सें.मी. लम्बा कटा हुआ) की 8–10 इंच मोटाई की पर्त फैला देते हैं। अब इस भूसे पर पानी छिड़क कर धीरे–धीरे भूसे को भिगोया जाता है इस प्रकार दिन में 3–4 बार भूसे को भिगोते हैं। यह भूसा 2 दिन में पूरी तरह भीग जाता है। भीगे भूसे में अन्य पदार्थ मिलाने से पहले उनको अच्छी तरह मिलाकर हल्के पानी में भिंगो कर एक गीले टाट से ढंक कर रात भर (16–18 घण्टे) रखते हैं। जिप्सम को छोड़कर दूसरे पदार्थ जैसे गेहूँ का चोकर, यूरिया और कैल्दि्गायक नाइट्रेट आदि को एकसार रूप से अच्छी तरह भींगे हुए भूसे में मिला देते हैं (चित्र–क)।

इस अच्छी तरह से मिलाए गए भूसे को कम से कम 1 मीटर चौड़ा और 1 मीटर ऊँचा तथा 1 मीटर लम्बा (लम्बाई घट बढ़ सकती है) बना देते हैं। इसे दृढ़ तो बनाया जाता है पर बहुत अधिक सघन रूप से दबाते नहीं हैं। हर 3 या 4 दिन के अन्तराल पर, भूसे के इस ढेर को खोल कर कम्पोस्ट बनाने वाले चबूतरे पर कम से कम आधे घण्टे के लिए फैला दिया जाता है। यदि भूसा सूखा लगे तो इस पर पानी का छिड़काव किया जा सकता है और खोलने के 50–60 मिनट बाद पुनः इसका चट्टा बना दिया जाता है। यह प्रक्रिया हर तीसरे या चौथे दिन दोहराई जाती है।

लम्बी अवधि से कम्पोस्ट तैयार करने के लिए पहली पलटाई छठे दिन की जाती है और तत्पश्चात पलटाई, 10, 13, 16, 19, 22 और 25वें दिन करते हैं। इस प्रकार से तैयार कम्पोस्ट को 26वें या 27वें दिन ट्रे में भर दिया जाता

है। दूसरी पलटाई के समय कैल्शियम या चॉक पाउडर मिलाते हैं। तीसरी पलटाई के बाद 10 कि.ग्रा. जिप्सम इसमें मिला देते हैं तथा शेष 10 कि.ग्रा. जिप्सम चौथी पलटाई के बाद मिलाया जाता है। तीसरी पलटाई के दौरान जिप्सम की पूरी मात्रा भी एक साथ मिलायी जा सकती है। पाँचवीं पलटाई के दौरान मेलाथियॉन को 5 लि. पानी में घोलकर ऊपर से छिड़ककर अच्छी तरह मिला देते हैं। पुनः चट्टा बना दिया जाता है और इसे 3 दिन बाद खोलते हैं।यदि अमोनिया की गंध अभी आती हो तो इसे और 2–3 दिनों के लिए चट्टा बना कर छोड़ देते हैं। इस प्रकार से लम्बी विधि द्वारा कम्पोस्ट तैयार करने में हर तीसरे दिन पलटाई करने पर 18–21 दिन लग जाते हैं तथा चौथे दिन पलटाई करने पर 26–28 दिन लगते हैं।

2. छोटी विधि या पास्तेरीकरण (पाशच्युराइजेशन) विधि

इस विधि में कम्पोस्ट दो अवस्थाओं में तैयार किया जाता है। अवस्था 1. कम्पोस्ट बनाने वाले चबूतरे पर की जाती है और तत्पश्चात अवस्था 2. एक बन्द कमरे में होती है जिसमें भाप की सहायता से कम्पोस्ट का पाशच्युराइजेशन एवं स्थिरीकरण (कंडीशन) किया जाता है।

लम्बी विधि की भांति ही कटे हुए भूसे को चबूतरे पर 30–40 सें.मी. मोटी पर्त बनाकर फैला देते हैं और पानी का छिड़काव करते हैं। 3–4 दिनों तक इसे उलट–पलट कर भिंगोते रहते हैं। चार दिन बाद, जिप्सम को भूसे में अच्छी तरह मिला देते हैं। भूसे के इस चट्टे की प्रत्येक 48 घण्टे बाद पलटाई करते रहते हैं। तीसरी पलटाई के बाद जिप्सम मिलाया जाता है। सातवें दिन इस कम्पोस्ट को ट्रे में भरकर या सीधे पास्च्युराजेशन कक्ष में पहुँचा देते हैं।

इसके बाद किसी छोटी खिड़की को खोलकर ताजी हवा कक्ष में घुसने देते हैं जिससे तापमान कम होना शुरू हो जाता है। 12–14 घंटे के भीतर जब तापमान 40–45 डिग्री सेल्सियस पहुँच जाता है, तब खिड़की बन्द कर देते हैं। यही तापमान अगले 2–3 दिनों तक बनाए रखते हैं। ऐसा करना कम्पोस्ट के स्थिरीकरण के लिए आवश्यक है। इस दौरान तापरागी सूक्ष्मजीव अमोनिया का उपयोग कर इसे कार्बनिक जैवमात्रा में परिवर्तित करते हैं। जब कम्पोस्ट परिवात–ताप पर पहुँच जाता है तो यह स्पॉन मिलाने के लिए तैयार हो जाता है। ध्यान रहे बटन मशरूम का स्पॉन कम्पोस्ट में मिलाते वक्त वह पूरी तरह तैयार तथा अमोनिया गंध रहित हो एवं उसका तापमान 27–28 डिग्री सेल्सियस से अधिक नहीं होना चाहिए।

पास्च्युराइज्ड कम्पोस्ट से 6 सप्ताह में मिलने वाली अनुमानित उपज 16–20 कि.ग्रा. प्रति 100 कि.ग्रा. कम्पोस्ट होती है जबकि लम्बी विधि द्वारा बनाए गए कम्पोस्ट से 6–8 सप्ताह में मशरूम की उपज 8–10 कि.ग्रा. प्रति 100 कि.ग्रा. कम्पोस्ट मिलने की सम्भावना होती है। 100 कि.ग्रा. शुष्क भूसे से पानी एवं अन्य अवयव मिलाने के बाद 200 से 225 कि.ग्रा. कम्पोस्ट तैयार हो जाता है।

कम्पोस्ट भरना

पूर्णरूपेक तैयार कम्पोस्ट का उपयोग शीघ्रतिशीघ्र कर लेना चाहिए क्योंकि यदि इसे ढेर में लम्बे समय तक छोड़ दिया जाए तो कम्पोस्ट खराब होने लगता है। कम्पोस्ट को ट्रे, रैकों या थैलियों में भर लेते हैं। ट्रे अथवा रैकों में कम्पोस्ट की 15 सें.मी. मोटी पर्त भरते हैं। भरने के बाद कम्पोस्ट को हल्का सा दबाकर समतल कर देते हैं। चार से पाँच ट्रे एक दूसरे के ऊपर रख सकते हैं। सबसे निचली ट्रे जमीन से 20 सें.मी. ऊँचाई पर होनी चाहिए। ऊपर–नीचे रखी दो ट्रे के बीच 20–25 सें.मी. का फासला अवश्य रखें जो विभिन्न क्रिया–कलापों और हवा के आने–जाने के लिए आवश्यक है। सबसे ऊपरी ट्रे में कम्पोस्ट और छत के बीच का फासला 100 सें.मी. अवश्य होना चाहिए।

यदि उत्पादन थैलियों में कर रहे हों तो 30 से 45 अथवा 45 से 60 सें.मी. आकार की पॉलीथीन की थैलियों का उपयोग कर सकते हैं। इनमें कम्पोस्ट की 25–30 इंच मोटी पर्त भर कर हल्का सा दबा देते हैं। इन थैलियों में 4–5 सें.मी. के फासले पर 2 मि.मी. व्यास के छेद बना देते हैं। थैलियों के मुँह धागे से बाँध देते हैं। स्पॉन मिलाने से पहले कम्पोस्ट को 500 पी.पी.एम. बाविस्टीन, टॉप्सिन एम या सीकारिल से उपचारित कर लेना चाहिए (चित्र –ख) ।

स्पॉन मिलाना

आम भाषा में मशरूम का बीज ही स्पॉन है। एक अच्छे स्पॉन में सफेद रंग का कवक जाल अच्छी तरह फैला रहता

है। एक महीने से अधिक पुराना स्पॉन प्रयोग नहीं करना चाहिए और अगर जरूरत हो तो इसका भण्डारण 5 डिग्री सेल्सियस तापमान पर करना चाहिए। इसमें किसी प्रकार का संदूषक नहीं होना चाहिए अर्थात दूसरे सूक्ष्मजीवों से मुक्त होना चाहिए। स्पॉन किसी इच्छित विभेद (स्ट्रेन) से तैयार किया जाना चाहिए जिसका भली–भांति परीक्षण किया जा चुका हो और क्षेत्र विशेष के लिए जिसकी संस्तुति की गई हो।

100 X 50 X 15 सें.मी. परिमाप की एक ट्रे के लिए लगभग 80–85 ग्राम स्पॉन पर्याप्त होता है। स्पॉन मिलाने के पश्चात ट्रे अथवा रैंकों को पुराने अखवार के पन्नों से ढक देते है तथा फुहारे की सहायता से इनके ऊपर धीरे धीरे पानी छिड़कते रहना चाहिए। स्पॉन की मात्रा मुख्य रूप से वातावरण की परिस्थितियों पर निर्भर करती है। आर्दगा परिस्थितियों में स्पॉन की मात्रा घटाई जा सकती है जबकि कम तापमान वाले ठंडे/पर्वतीय क्षेत्रों में स्पॉन की मात्रा बढ़ाई जानी चाहिए। आमतौर पर (भार) के अनुपात से कम्पोस्ट के भार का 1 प्रतिशत या सूखे भूसे के भार के 2 प्रतिशत के हिसाब से कम्पोस्ट में स्पॉन मिलाया जाता है।

स्पॉन का फैलना : अनुकूल परिस्थितओं में स्पॉन मिलाने के 14–15 दिनों के भीतर कम्पोस्ट की सतह सफेद, रूई के समान, कवक जाल की वृद्धि से ढंक जाती है। इस अवस्था को कवक जाल फैलने की पूर्णावस्था कहा जाता है। यदि तापमान अनूकूलतम तापमान से कम है तो इस अवस्था के आने में 20–22 दिन लग सकते है जबकि तापमान अधिक होने पर कवक जाल की वृद्धि अवरुद्ध हो जाती है।

मशरूम घर का तापमान 22 से 25 डिग्री सेल्सियस के बीच और आर्द्रता का स्तर 80–85 प्रतिशत बनाए रखा जाता है। इसके लिए समय–समय पर, मशरूम घर की दीवारों और फर्श पर पानी का छिड़काव करते रहना चाहिए। कम्पोस्ट में स्पॉन फैलाते समय ताजा हवा की आवश्यकता नहीं होती इसलिए अंधेरा और आर्द्रता बनाए रखने के लिए कमरे को बंद रखें। हवा में 26 प्रतिशत स्तर तक कार्बन डाइऑक्साइड गैस, मशरूम के कवक जाल की वृद्धि में सहायक होती है।

केसिंग : जब कम्पोस्ट में स्पॉन पूरी तरह से फैल जाता है तो रैक, थैलों अथवा ट्रे पर केसिंग की जाती है। स्पॉन फैलने के बाद कम्पोस्ट को जिस चीज से ढंका जाता है उसे केसिंग मिट्टी कहते हैं। अच्छी केसिंग मिट्टी उदासीन या लगभग उदासीन होनी चाहिए अर्थात उसका पी.एच. माल लगभग 7 होना चाहिए और यह छिद्रयुक्त होनी चाहिए ताकि हवा का आदान–प्रदान सुगमता (आसानी) से हो सके। इसकी पानी रोकने की क्षमता भी अधिक होनी चाहिए। केसिंग मिट्टी निर्जलीकृत होनी चाहिए ताकि इसमें हानिकारण पीड़क और सूक्ष्मजीव न रहे। केसिंग इसलिए की जाती है कि मशरूम के फलनकाय बनना आरम्भ हो जायें और बनने के बाद सहारा मिले। विभिन्न प्रकार के केसिंग पदार्थ जो प्रयोग में लाए जा सकते हैं, इस प्रकार से हैं –

1. तीन हिस्से गाय का सड़ा हुआ गोबर और एक हिस्सा, पाउडर बनाकर छनी हुई क्ले मिट्टी (3:1) के अनुपात में) मिलाकर केसिंग मिट्टी के रूप में प्रयोग कर सकते है। गाय का गोबर एक वर्ष पुराना अवश्य होना चाहिए।
2. मशरूम उगाने के बाद शेष बचा कम्पोस्ट (दो वर्ष पुराना), गाय का सड़ा हुआ गोबर और क्ले मिट्टी 2:1:1 के अनुपात में मिलाकर केसिंग के लिए प्रयोग कर सकते है।
3. बजरी और गोबर की खाद 1:1 के अनुपात में मिलाकर प्रयोग कर सकते हैं।
4. दोमट मिट्टी और गोबर की खाद 1:1 अनुपात में मिलाकर प्रयोग कर सकते हैं।
5. बगीचे की मिट्टी और गोबर की खाद 1:1 अनुपात में मिलाकर प्रयोग कर सकते हैं।

केसिंग के लिए प्रयोग में लाया जाने वाला पदार्थ, कम्पोस्ट पर पहले भी–भांति विसंक्रमित कर लेना चाहिए ताकि मिट्टी में उपस्थित कीट, सूत्रकृमि या अन्य हानिकारण सूक्ष्मजीव मर जाएँ। विसंक्रमक, भाप द्वारा या रसायन द्वारा किया जा सकता है।

भाप द्वारा निसंक्रमक : एक कक्ष में केसिंग पदार्थ रखकर उसमें भाप प्रवाहित की जाती है और कम से कम चार

घंटे तक 56–60 डिग्री से. अथवा 2 घंटे तक 80 डिग्री से. तापमान बनाए रखते हैं।

रासायनिक निसंक्रमक : आधा लिटर 40 प्रतिशत फॉर्मेलीन का घोल 10 लि. पानी में मिलाकर प्रयोग किया जाता है। यह घोल एक घन मीटर केसिंग मिट्टी के लिए पर्याप्त होता है और उस पर फॉर्मेलीन का पानी में बना घोल छिड़का जाता है। उपचारित मिट्टी का ढेर बनाकर उसे 48 घंटे के लिए एक अन्य पॉलीथीन की चादर द्वारा ढंक देते हैं। तत्पश्चात एक हप्ते तक इस केसिंग मिटटी को कुरेद कर तथा उलट–पुलट कर फॉर्मेलीन की दुर्गंध दूर करते हैं। फॉर्मेलीन की गंध से मुक्त होने पर यह केसिंग मिट्टी प्रयोग के लिए तैयार हो जाती है।

जब कम्पोस्ट में स्पॉन पूरी तरह फैल जाता है तो कम्पोस्ट को केसिंग मिटटी की 3–5 सें.मी. की पतली परत से ढंक दिया जाता है। केसिंग के बाद अगले 3 दिन तक मशरूम घर का तापमान 24–25 डिग्री से. बनाए रखते हैं। तीन दिन बाद तापमान 18 डिग्री से तक कम कर देते हैं और फलनकाय बनने के दौरान तापमान 14–18 डिग्री से. रखा जाता है। तीन दिन के भीतर मशरूम का कवकजाल, केसिंग मिट्टी पर फैल जाता है। जब भी आवश्यक हो, स्प्रेयर द्वारा पानी का छिड़काव करना चाहिए और पूरी फसल के दौरान आपेक्षिक आर्द्रता कम से कम 80–85 प्रतिशत बनाए रखते हैं।

फलनकाय बनना : फलनकाय बनते समय ताजा हवा आवश्यक होती है। समय–समय पर स्प्रेयर से पानी का छिड़काव कर केसिंग मिट्टी को नम बनाए रखते हैं। इस दौरान तापमान 14–18 डिग्री से. और आपेक्षिक आद्रता 80–85 प्रतिशत बनाए रखनी चाहिए (चित्र –ग)।

तुड़ाई: अनुकूल परिस्थितियों में सामान्यतया केसिंग के 15–20 दिन बाद मशरूम के पिन दिखाई देने लगते हैं। 4–5 दिन के भीतर ये पिन सफेद बटन का रूप ले लेते हैं। तुड़ाई योग्य मशरूम तैयार होने में कुल मिलाकर 8–10 दिन लग जाते हैं। जब मशरूम के पीलियस (टोपी) का व्यास 3–4.5 सें.मी. तक हो जाय और स्टाइप (तने) की लम्बाई से लगभग दोगुना हो जाय तो इसकी तुड़ाई कर लेनी चाहिए। यदि तुड़ाई से पहले 2 प्रतिशत एस्कॉर्बिक अम्ल का छिड़काव कर दिया जाय तो मशरूम का रंग सफेद बना हुआ रहता है क्योंकि पॉलीफीनोल ऑक्सिडज नामक एन्जाइम की क्रिया रुक जाती है। जब तक टोपी दृढ़ अवस्था में हो और उसके नीचे स्थित झिल्ली फटी न हो, तुड़ाई का सही समय माना जाता है। टोपी ढ़ीली पड़ने और झिल्ली के फटने के फलस्वरुप गिल्स खुलने के बाद मशरूम घटिया समझे जाते हैं और बाजार में भी उनका मूल्य नहीं मिल पाता।

मशरूम तोड़ने क लिए उसकी टोपी को ऊँगलियों से पकड़ते हैं और नीचे की ओर हल्का सा दबाव देते हुए इधर–उधर घुमाकर तोड़ लेते हैं। चाकू द्वारा तने के निचले, मिटटी लगे हिस्से को काट कर अलग कर देते है ओर साफ सुथरा मशरूम इकट्ठा कर लेते हैं (चित्र –घ)।

उपज (पैदावार):

लम्बी विधि द्वारा कम्पोस्ट तैयार करने पर प्रति वर्ग मीटर क्षेत्र से औसतन 8–10 कि.ग्रा. ताजे मशरूम की उपज प्राप्त होती है। यह उपज प्रति 100 कि.ग्रा. कम्पोस्ट से 5–6 सप्ताह में प्राप्त होती है। दूसरी ओर जब कम्पोस्ट छोटी विधि द्वारा तैयार किया जाता है और पास्च्यूराइज्ड कम्पोस्ट प्रयोग किया जाता है तो 6 सप्ताह में 100 कि. ग्रा. कम्पोस्ट से 16–20 कि.ग्रा. ताजा मशरूम प्राप्त किया जा सकता है। पॉलीथीन की थैलियों में मशरूम उगाने की विधि से 100 कि.ग्रा. कम्पोस्ट से 16–20 कि.ग्रा. ताजा मशरूम प्राप्त किया जा सकता है।

भण्डारण एवं पैकिंग:

1. परिवात ताप पर मशरूम को 24 घंटे तक रखा जा सकता हे जबकि प्रशीतित परिस्थितियों में 3–4 दिनों तक इस खुम्ब का भण्डारण किया जा सकता है।
2. तुड़ाई के बाद मशरूम को बहते पानी में धोकर तुरन्त 5 डिग्री से. पर ठन्डा कर देना चाहिए।
3. पैकिंग 200 ग्रा. या 500 ग्रा. के पॉलीथीन की

थैलियों में की जाती है लेकिन भण्डारण के दौरान इन थैलियों में एक से.मी. व्यास के दो–दो दोनों तरफ कर देते हैं।

मशरुम की खेती से लाभ

1. मशरूम की खेती के व्यवसाय द्वारा ऐसा गांव जो रोजगार न होने की वजह से पलायन की मार से पूरी तरह झुलसा हुआ हो, का चयन कर वहां के ग्रामीण बेरोजगार युवकों और मजदूर भाइयों को स्वरोजगार का अवसर दिया जा सकता है।
2. मशरूम की खेती घर की छत पर भी कर सकते हैं जिससे ज्यादा मुनाफा कमाया जा सकता है।
3. मशरुम की खेती अन्य फसलों की उपज से बचे पदार्थों जैसे कि अनाज वाली फसलों का भूसा अथवा अन्य कृषि–अवशेषों पर की जाती है जिससे उनका पुनः च्छक्र होकर उच्च कोटिके पोषक तत्वों एवं औषधीय गुणों से भरपूर मशरुम प्राप्त होता है।
4. मशरुम की खेती के बाद बचा हुआ कम्पोस्ट और भूसा फिर से कार्बनिक खाद के रुप में इस्तेमाल किया जा सकता है और यह जानवरों को खिलाने के काम भी आ सकता है या उसे पूरी तरह सड़ाने के बाद अपने खेत की मिटटी में मिला सकते हैं।
5. बेकार पड़ी बंजर जमीन पर मशरुम फार्म बना सकते हैं क्योंकि मशरुम की खेती के लिए अन्य फसलों की तरह उपजाऊ जमीन की आवश्यकता नहीं होती। और इस प्रकार से यह खेती छोटे किसानों के लिए काफी लाभदायी है।
6. किसान, मशरुम की खेती को अपनी सामान्य खेती के साथ–साथ दो फसलों के बीच मिलने वाले समय के दौरान, अतिरिक्त आय के साधन के रुप में कर सकते हैं। इससे हमारे पर्यावरण को कोई नुकसान नहीं होता।
7. घरेलू महिलाओं के आर्थिक रुप से स्वावलम्बी बनाने के लिए भी मशरुम की खेती में अच्छी संभावनाएँ हैं।
8. आचार फैक्टरी, सूप के पाउडर, होटलों व विवाह समारोह में सब्जी आदि में इस्तेमाल होने वाली मशरुम की खपत से निर्यात की प्रबल संभावनाएँ हैं।
9. मशरुम की खेती की उत्पादकता प्रति इकाई क्षेत्र उत्पादन की दृष्टि से किसी भी अन्य फसल से कई गुणा ज्यादा है।

(क) कम्पोस्ट तैयार करना

(ख) स्पॉन मिले कम्पोस्ट को थैलों/ट्रे में भरना

(ग) बटन मशरूम फलनकाय

(घ) तुड़ाई योग्य बटन मशरूम

अधिक आय हेतु उत्तम कृषि क्रियाओं की प्रासंगिकता

मनजीत सिंह नैन, रश्मि सिंह एवं ज्योति रंजन मिश्रा
कृषि प्रसार संभाग,
आईसीएआर–आईएआरआई, नई दिल्ली

विकासशील देशों में हैजा और टाइफाइड जैसे रोगों के बढ़ते प्रकोप जो अपर्याप्त स्वच्छता उपायों और प्रदूषित पेयजल का नतीजा है और विश्व भर में प्रतिरक्षा प्रणाली से समझौता किए लोगों यानी एचआईवी/एड्स आदि से ग्रसित व्यक्तियों की बढ़ती हुई संख्या के मध्यनजर सुरक्षित भोजन की आपूर्ति एक वैश्विक जोरका विषय बन गया है। विकसित देशों जैसे यूरोपीय संघ में खाद्य सुरक्षा के महत्व को हाल के वर्षों में फैले पागल गाय रोग (बीएसई) और मुंह खुर रोग के साथ–साथ पर्यावरण प्रदूषण संबंधी विशेष रूप से कीटनाशकों और आनुवांशिक रूप से रूपांतरित जीव (जीएमओ)के मुद्दों के साथ बल दिया गया है।

कुछ प्रमुख देशों जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका (7.0 किलोग्राम/हेक्टेयर), यूरोप (2.5 किलोग्राम/हेक्टेयर), ताइवान (17 किग्रा/हेक्टेयर)जापान (12 किग्रा/हेक्टेयर), कोरिया (6.6 किग्रा/है) आदि में कीटनाशकों की खपत भारतीय उपभोग (0.5 किलो/हेक्टेयर) से बहुत अधिक हैफिर भी हमारे पास खाद्य उत्पादों में कीटनाशक अवशेष की समस्या है, जो कि मुख्य रूप से फल और कृषि फसलों कीटनाशकों को मारने के लिए उपयोग किया जाता है,से उत्पन्न होते हैं। भारत में अन्य देशों के मुकाबले खाद्य उत्पादों में अधिक कीटनाशक अवशेषों के कारणों में उपघटनीय कीटनाशकीं का उपयोग ना करना है। अन्य देशों के द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली कीटनाशक लगातार प्रकृति के नहीं हैं जबकि लगातार प्रकृति के कीटनाशक के अधिक उपयोग के कारण भारत में उनके अवशेष खाद्य उत्पादों में रहते हैं। कीटनाशकों के न्यायसंगत उपयोग के संबंध में किसानों में जागरूकता की कमी के कारण भोजन और कृषि उत्पादों में कीटनाशक के अवशेषों की समस्या है। अन्य कारणों में हैः

1. रासायनिक कीटनाशकों का अंधाधुंध उपयोग
2. निर्धारित प्रतीक्षा अवधि को नहीं मानना
3. कम गुणवत्ता के कीटनाशकों का उपयोग
4. कीटनाशकों के विक्रेताओं द्वारा गलत सलाह और गलत कीटनाशकों की आपूर्ति
5. डीडीटी और दूसरे प्रतिबंधित कीटनाशकों का जन स्वास्थ्य कार्यक्रमों में अभी भी उपयोग
6. कीटनाशक निर्माण इकाइयों से स्राव
7. शेष बचे कीटनाशकों का गलत निपटारा और पादप रक्षा उपकरणों की उचित सफाई का अभाव
8. बिक्री से पहले फलों और सब्जियों का कीटनाशकों से उपचार

वेक्टर से उत्पन्न बीमारियों से नियंत्रण बनाए और खाद्य उत्पादन की सतता हेतु कीटनाशकों कोसामाजिक आवश्यकता के रूप में माना जाता है।अतः पर्यवेक्षित क्षेत्र परीक्षणों के आधार पर अच्छी उन्नत कृषि पद्धतियों की सिफारिश करके कीटनाशकों के सुरक्षित उपयोग का विकल्प,प्रतीक्षा अवधि फसल कटाई पूर्व अंतराल की सिफारिश कर के खाद्य वस्तुओं में कीटनाशक अवशेष निर्धारित सुरक्षित सीमा के भीतर ही बने रहें और कृषि उत्पादन में कीटनाशक अवशेषों की निगरानी को अपनाया जाना चाहिए। कीटनाशकों के अवशेषों को कम करने और 1968 के कीटनाशक एक्ट के प्रावधानों को लागू करने के लिए कुछ कदम पहले ही उठाए गए हैं। भारत ने किसानों को कीटनाशकों के दुष्प्रभाव, जरूरत–आधारित रासायनिक कीटनाशकों के उपयोग, सिफारिश की गई खुराक का उपयोग,सही अनुप्रयोग तकनीकों का इस्तेमाल, निर्धारित प्रतीक्षा अवधिकी अवपालना, एकीकृत कीट प्रबंधन (आईपीएम) और जैविक खेती के लाभ की प्रथाके लिए किसानों को शिक्षित करना शुरू कर दिया है। नतीजतन चावल और कपास जो मुख्य कीटनाशक–उपभोक्ता फसलें

हैं में कीटनाशकों की खपत में काफी कमी आई है। 1994–95 के दौरान रासायनिक कीटनाशकों की खपत 65462 मीट्रिक टन से 2001–02 में 47020 मीट्रिक टन तक कम हो गई और जैव–कीटनाशकों के उपयोग में 1996 –97 के 219 मीट्रिक टन से 2001– 02 में 909 मेट्रिक टन तक की वृद्धि हुई।

माइक्रोबियल खादय सुरक्षा की चिंता और खाद्य सुरक्षा मानकों को बदलने के परिणामस्वरूप बढ़ते प्रकोपों से जनता के ज्ञान में वृद्धि,सूचना की उपलब्धता और सक्रियता, वैज्ञानिक ज्ञान में वृद्धि, बेहतर निगरानी में वृद्धि, मूल्यवर्धित अवसरों में तेजी, घरेलू और आयात व्यापार और भूमि उपयोग और अपशिष्ट प्रबंधन में वृद्धि दर्ज की गई है। खाने वाले पदार्थों में परिवर्तन जैसे कि ''जोखिमयुक्त'' खाद्य पदार्थ जैसे कटा हुआ पदार्थ, सलाद, कम से कम संसाधित पूर्व–तैयार, आयातित खाद्य पदार्थ (वर्षभर की उपलब्धता) और हरी प्याज के रूप में ''जोखिम वाले'' उत्पादन की बढ़ती लोकप्रियता, कैलान्ट्रो (16% पॉजिटिव सॅल्मोनेला और शिगेला) मेस्कुलेशन स्प्रिंग मिक्स, अंकुरित बीज, अनपस्चुरिज्ड रस और खरबूजे खाद्य सुरक्षा और इसकी गुणवत्ता के बारे में प्रेरणा शक्ति है। संभावित संदूषण स्रोतों में शामिल हैंःसिंचाई जल,जैविक खाद (जानबूझकर और आकस्मिक)उत्पादन और फसल की प्रक्रिया के दौरान अपर्याप्त क्षेत्र स्वच्छता,प्रसंस्करण आदि के दौरान पानीसे संक्र्मण,हैंडलिंगके दौरान क्रॉस संदूषण और खाद्य उत्पादों के वितरण के दौरान अपर्याप्त स्वच्छता। सुरक्षित खाद्य उत्पादन और खाद्य सुरक्षा, गुणवत्ता और पर्यावरणीय स्थिरता के बारे में कई हितधारकों की चिंताओं और प्रतिबद्धताओं के परिणामस्वरूप तेजी से बदलते हुए और खाद्य अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण संदर्भ में हाल ही के वर्षों में जीएपी (उन्नत कृषि अवधारणा) की अवधारणा विकसित हुई है। कृषि उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार, कृषि क्रिया की निगरानी,कटाई और प्रसंस्करण की निगरानी के रूप में जीएपी अस्तित्व में आ गया है। जीएपी का मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि पादप सामग्री उपभोक्ताओं की मांग और उच्च गुणवत्ता के मानकों को पूरा करती हो । यह सामान्य प्रिंसिपलों का वर्णन करता है और गुणवत्ता नियंत्रण उपायों के साथ खेती के लिए तकनीकी विवरण प्रदान करता है।इसमें प्राथमिक उत्पादक से व्यापारियों तक उत्पादन प्रक्रिया के प्रतिभागियों को स्वैच्छिक रूप से दिशानिर्देशों का पालन करना और उन्हें समझने के लिए व्यावहारिक उपाय विस्तृत करना आवश्यक है।

हितधारकों में सरकारें, खाद्य प्रसंस्करण और खुदरा उद्योग,किसान,कृषि मजदूर,और उपभोक्ता, वे सभी जो मध्यम और दीर्घकालिक दोनों में खाद्य सुरक्षा,खाद्य गुणवत्ता, उत्पादन क्षमता,आजीविका और पर्यावरण लाभ के विशिष्ट उद्देश्यों को पूरा करने की कोशिश करते हैं।शब्द जीएपी के विभिन्न हितधारकों के लिए अलग अर्थ और प्रभाव हैं। उदाहरण के लिए,जीएपी अंतरराष्ट्रीय नियामक ढांचे और प्रथाओं के संबद्ध कोड में भोजन के प्रदूषण को कम करने या रोकने के लिए औपचारिक रूप से मान्यता प्राप्त शब्दावली के रूप में प्रयोग किया जाता है। अच्छे कृषि व्यवहार (जीएपी) वे व्यवहार हैं जो खेती प्रक्रियाओं के लिए पर्यावरणीय, आर्थिक और सामाजिक स्थिरता को संबोधित करते हैं,और परिणामस्वरूप सुरक्षित और गुणवत्ता वाले भोजन और गैर–खाद्य कृषि उत्पाद मिलता है। इसमें किसानों के बाजारों के अनूठे उत्पादक–से–उपभोक्ता संबंध इसे पारंपरिक खाद्य खुदरा विक्रेताओं से अलग है। आकस्मिक पर्यवेक्षक यह एहसास नहीं कर सकता है कि इस जमीनी रिश्ते को प्राप्त करने और बनाए रखने के लिए पीछे के बहुत प्रबंधन,समय,काम,और निश्चित रूप से पैसे की आवश्यकता होती है। किसानों के बाजार को चलाने के लिए सप्ताह के बाद सप्ताह, वर्ष के बाद वर्ष के लिए आवश्यक वित्त पोषण प्रदान करना जटिल और श्रम–गहन रूप में ही भौतिक बाजार चलाने के रूप में हो सकता है।

भारत की बुनियादी ताकत कृषि है। लेकिन इसकी विशाल क्षमता का पूरी तरह से फायदा नहीं हुआ है। इस मार्केट की क्षमता को कृषि में सुधार और गुणवत्ता और खाद्य सुरक्षा के क्षेत्र में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धी उत्पादन के माध्यम से किया जा सकता है। कृषि उत्पाद को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धात्मक बनाने के लिए दीर्घकालिक सुधार और स्थिरता के लिए वाणिज्यिक कृषि उत्पादन के ढांचे के भीतर विश्व स्तर पर स्वीकृत गुड कृषि प्रैक्टिस (जीएपी) की अवधारणा को शामिल करने वाले अभिनव कृषि पद्धतियों

को महत्वपूर्ण बनाना जरूरी है। जीएपी का कार्यान्वयन संसाधनों के इष्टतम उपयोग जैसे कि कीटनाशकों,उर्वरक, जल और पर्यावरण–अनुकूल कृषि को बढ़ावा देगा। यह फसल से पूर्व और बाद के निपटने और अन्य रसदों को एकीकृत करने में भी ध्यान रखता है। गैप (जी ए पी) उन क्षेत्रों में महत्वपूर्ण है जहां विनियमित नियंत्रण उपायों को मजबूत किया जाना हो और खेतों से कच्चे माल का उत्पादन वांछनीय गुणवत्ता के उत्पाद की निरंतर आपूर्ति हेतु सुनिश्चित करना जरूरी हो।

जीएपी के उद्देश्य

- खाद्य श्रृंखला में सुरक्षा और उत्पाद की गुणवत्ता सुनिश्चित करना
- आपूर्ति श्रृंखला प्रशासन को संशोधित करके नए बाजार लाभों को करना
- प्राकृतिक संसाधनों में सुधार, श्रमिक स्वास्थ्य और काम की स्थिति, नए बाजार का निर्माण करना
- विकासशील देशों में किसानों और निर्यातकों के लिए अवसर
- अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा
- पर्यावरण नियंत्रण
- किसान स्वास्थ्य
- सतत विकास

अतः मूल तत्वों में शामिल हैं। स्वच्छ हाथ, साफ मिट्टी, स्वच्छ पानी और साफ सतह। इस संबंध में प्रमुख चिंताएं हैं।

- समस्याओं के होने से पहले निवारण
- जोखिम आकलन
- सभी स्तरों पर खाद्य सुरक्षा के प्रति प्रतिबद्धता
- परिचालन स्तर पर अनिवार्य कर्मचारी शिक्षा कार्यक्रम
- फील्ड और उपकरण स्वच्छता
- एकीकृत कीट और फसल प्रबंधन
- निगरानी और प्रवर्तन
- उत्पादन श्रृंखला भर में संचारपर जोर
- स्वतंत्र, तृतीय–पक्ष ऑडिट के जरिए सत्यापन

गेप में मृदा, जल, फसल और चारा उत्पादन, फसल उत्पादन, पशु उत्पादन, पशु स्वास्थ्य और कल्याण, फसल और ऑन–फार्म प्रोसेसिंग और संगृहण, ऊर्जा और अपशिष्ट प्रबंधन, मानव कल्याण, स्वास्थ्य और सुरक्षा, वन्यजीव और लैंडस्केप शामिल हैं।

जीएपी को अपनाने के अपेक्षित लाभ

- क्षेत्रीय स्तर पर बुनियादी ढांचे का विकास
- किसानों द्वारा अच्छी कृषि पद्धतियों के लिए संस्कृति का निर्माण
- विभिन्न आकारों के बावजूद खेतों में एक समान दृष्टिकोण
- अच्छी गुणवत्ता और सुरक्षित भोजन के उपभोग की आवश्यकता के बारे में किसानों और उपभोक्ताओं के बीच जागरूकता में वृद्धि
- खाद्य श्रृंखला के पूर्ण एकीकरण के माध्यम से ट्रेसीबिलिटी (पता लगाने की क्षमता)
- पर्यावरण और साथ ही मिट्टी की उर्वरता में सुधार
- कार्यकर्ता सुरक्षा और कल्याण
- अच्छी गुणवत्ता और सुरक्षित उपज के निर्माता के रूप में अंतर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतिष्ठाऔर कृषि उत्पादों के निर्यातकों का सामना करने वाले व्यापार (टीबीटी) की तकनीकी बाधाओं को हटाना ।
- टिकाऊ उत्पादन को बढ़ावा
- ऑन–फार्म प्रबंधन में सुधार
- उत्पादों के मूल्य में वृद्धि
- वैश्विक मान्यता प्रणाली की अखंडता
- छोटे धारकों के लिए बाजार पहुंच
- खरीदार की आवश्यकताओं के अनुसार उत्पादन
- जिम्मेदार और टिकाऊ उत्पादन के माध्यम से खुदरा विक्रेताओं और उपभोक्ताओं को विश्वास दिलाना

- प्रमुख खुदरा समूहों के लिए स्वीकार्य न्यूनतम मानक का अनुपालन
- वाणिज्यिक कृषि उत्पादन में आईपीएम और आईसीएम शामिल करना
- एचएसीसीपी सिद्धांतों का समर्थन
- खरीदार और उसके परिवार के लिए भोजन को सुरक्षित और स्थायी बनाना
- वैश्विक स्तर पर उन्नत कृषि प्रणालियाँ सुरक्षित और टिकाऊ खाद्य उत्पादन के लिए व्यापार से व्यापार के मानक है।
- उपभोक्ता मांगें हमारे सुधार और विकास प्रयासों को संचालित करती हैं। इसमें यह जाना जाता है कि आप क्या चाहते हैं।
- यह एक स्थायी कृषि श्रमिकों के कल्याण और सुरक्षा पशु कल्याण और पर्यावरण के बारे में सूचित करने के लिए एक उपभोक्ता जागरूकता अभियान है।

गैप प्रमाणन के लिए सर्टिफिकेशन ऑप्शन

आवेदक दो विकल्प (व्यक्तिगत या समूह प्रमाणन) में से किसी एक के तहत प्रमाण पत्र के लिए आवेदन कर सकते हैं। विकल्प प्रमाणन के लिए आवेदन करने वाली कानूनी इकाई के संविधान पर आधारित हैं। प्रमाणन के लिए निम्नलिखित विकल्प उपलब्ध होंगेः

विकल्प 1 व्यक्तिगत प्रमाणन

यह व्यक्तिगत उत्पादक प्रमाणीकरण के लिए लागू होता है और प्रमाणीकरण प्राप्त करता है। निर्माता को एक व्यक्ति (व्यक्तिगत) या व्यवसाय (व्यक्तिगत या उत्पादक समूह) के रूप में परिभाषित किया जाता हैजो उत्पाद के उत्पादन के लिए कानूनी तौर पर जिम्मेदार है और उस कृषि व्यवसाय द्वारा बेचा जाने वाले उत्पादों के लिए कानूनी जिम्मेदारी है।

विकल्प 2 समूह प्रमाणन

क्योंकि कानूनी इकाई प्रमाणन हो जाती है अतः यह एक निर्माता/किसान समूह, समूह प्रमाणन और किसान समूह के लिए लागू होता है। (समूह प्रमाणीकरण का विवरण समूह प्रमाणन प्रक्रिया (आईजीएपी 03) में दिया गया है। यह योजना सभी किसानों /उत्पादकों या संगठनों के लिए खुली है जो भारत में कानूनी संस्थाएं हैं। अच्छे कृषि उत्पाद के लिए प्रमाणीकरण प्राप्त करने की जानकारी क्यूसीआई की वेबसाइट पर भी उपलब्ध है। प्रमाणीकरण, प्रमाणन निकायों (सीबीएस) द्वारा प्रमाणीकरण योजना के लिए मान्यता प्राप्त आईएसओ/आईईसी गाइड 65/आईएसओ आईईसी 17065 के अनुसार एनएबीबी या अनुमोदित क्यूसीआईद्वारा किया जाता है । इस योजना के तहत संचालित करने के लिए सीबीएस को आईएसओ/आईईसी गाइड 65/आईएसओ आईईसी 17065 के लिए मान्यता के दायरे के विस्तार की आवश्यकता होगी।

प्रमाणीकरण के लिए अनुपालन स्तर

निर्माता को जीएपी मानक में निर्धारित तीन प्रकार के अनुपालन मानदंडों का पालन करने की आवश्यकता है। यह महत्वपूर्ण प्रमुख और सूक्ष्म हैं जो प्रमाणन से पहले सभी मामलों में पूर्ण होने चाहिए। अनुपालन को ''हां'' (अनुपालन के लिए) ''नहीं'' (अनुपालन के लिए नहीं) के साथ चेकलिस्ट पर इंगित किया जाता है। प्रत्येक नियंत्रण मानदंड के लिए साक्ष्य/टिप्पणियां प्रदान की जानी चाहिए– ये घटना के बाद लेखापरीक्षा निशान की समीक्षा करने में सक्षम होंगी और इसमें मूल्यांकन के दौरान किए गए संदर्भों के विवरण शामिल होंगे। हालांकि सभी बाहरी मूल्यांकन आत्म–आकलन और आंतरिक मूल्यांकन में निरीक्षण किए गए सभी महत्वपूर्ण और प्रमुख अनुपालन मानदंडों के लिए सबूत/टिप्पणी देने अनिवार्य है।

अनुपालन का स्तर निम्न के आधार पर स्थापित किया जाएगाः

क) महत्वपूर्ण – सभी लागू महत्वपूर्ण नियंत्रण बिंदुओं का 100ः अनुपालन

बी) मेजर– सभी लागू (लापता) प्रमुख नियंत्रण बिंदुओं का 90ः अनुपालन अनिवार्य है

सी) सभी लागू सूक्ष्म नियंत्रण बिंदुओं के न्यूनतम –75ः अनुपालन अनिवार्य है।

–आवेदन पंजीकरण आवेदक द्वारा प्रदान किए गए दस्तावेज साइट मूल्यांकन रिपोर्ट और मूल्यांकन और प्रमाणीकरण के

लिए रिपोर्टों की समीक्षा परसर्टिफिकेशन बॉडी सभी प्रमाणन गतिविधियों का रिकॉर्ड बनाएगी।

शुल्क

यूनिटकी भौगोलिक स्थिति, यूनिट के आकार के बीच किसी भी भेदभाव के बिना योजना के विभिन्न गतिविधियों के लिए ग्राहक से शुल्क लिया जाएगा। प्रमाणन संस्था की शुल्क संरचना सार्वजनिक रूप से पहुंच योग्य होगी और अनुरोध पर उपलब्ध भी कराई जाएगी। प्रमाणन संस्था प्रमाणन देने से पहले ग्राहकों को इसकी शुल्क संरचना को सूचित और सहमति प्रदान करेगा। जैसा कि और जब कोई शुल्क बदलेगातो उसे स्वीकृति के लिए प्रमाणन की इस योजना के तहत प्रमाणित सभी आवेदकों और ग्राहकों को सूचित किया जाएगा।

लेखकों से...

1. अपने तकनीकी एवं लोकप्रिय लेख हिन्दी में टाइप करवाकर भेजें।
2. रचना पृष्ठ के एक ओर उचित हाशिया और पंक्तियों के बीच स्थान छोड़कर सम्पादक, प्रसार दूत के पास यथा समय भेजें।
3. वर्ष 2015 से प्रसार दूत का अंक त्रैमासिक किया गया है। लेखकों से अनुरोध है कि प्रथम अंक के लिए प्रकाशनार्थ सामग्री 30 जनवरी, द्वितीय अंक 30 अप्रैल, तृतीय अंक 31 जुलाई तथा चतुर्थ अंक 31 अक्तूबर तक अवश्य भेज दें।
4. तकनीकी पर दी गई जानकारी की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी। रचना को प्रकाशित करने या न करने का पूरा अधिकार सम्पादक मंडल को होगा।

प्रसार दूत का प्रकाशन समय

प्रथम अंक मार्च, द्वितीय अंक जून, तृतीय अंक सितम्बर और चतुर्थ अंक दिसम्बर में प्रकाशित होगा।

वार्षिक शुल्क 80/- मनीऑर्डर द्वारा भेजें।

शुल्क और सामग्री भेजने एवं पत्रिका मंगवाने का पता

प्रभारी अधिकारी

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)

भा.कृ.अ.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

फोन: 011-25841670, 25846233, 25841039, 25803600

पूसा एग्रीकॉम: 1800 11 8989 (नि:शुल्क)

पाठकों से...

प्रसार दूत में प्रकाशित किसी भी तकनीकी के विषय में अंश और समाधान हेतु आपके पत्रों का स्वागत है। विषयों पर अधिक जानकारी के लिए लेखक से सीधे भी सम्पर्क कर सकते हैं।

किसानों से...

यदि आपकी खेती व पशु-पालन संबंधी कोई विशेष समस्या है, तो लिखकर भेजें। हम प्रसार दूत के माध्यम से उसका समाधान आप तक पहुंचाएंगे।

अन्त में ...

आपकी खुशहाली ही हमारी सफलता है।

प्रो. एम एस स्वामीनाथन पुस्तकालय

निदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012 द्वारा प्रकाशित तथा

मैसर्स एम एस प्रिंटर्स, सी-108/1 बैक साइड नारायणा इंडस्ट्रीयल एरिया, फेस-1, नई दिल्ली-110028, द्वारा मुद्रित

फोन: 7838075335, 9899355565, 9899355405,